दंगों के बाद का अहमदाबाद

सांप्रदायिक राजनीति का नया विन्यास

नेहा अग्रवाल
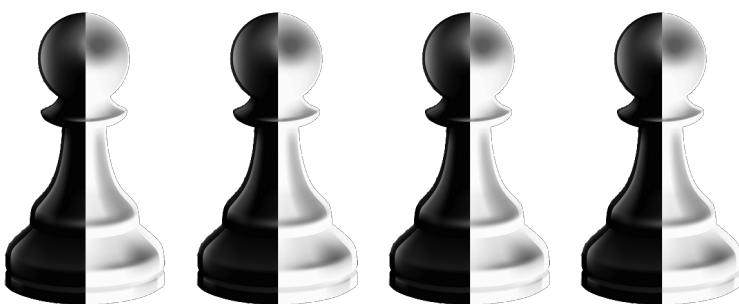
यह लेख गुजरात में 2002 के दौरान हुई मुसलमान विरोधी हिंसा का अध्ययन करने के ज़रिए समकालीन सांप्रदायिक राजनीति के नए रूप की ओर इंगित करता है। इसके तहत बड़े राज्यव्यापी दंगों को प्रोत्साहन देने के बजाय स्थानीय स्तर पर छोटे और कम-तीव्रता वाली सांप्रदायिक घटनाओं के ज़रिए सांप्रदायिक लामबंदी मज़बूत करने की रणनीति अपनाई जाती है। यह रणनीति न केवल उपयोगी, बल्कि सुविधाजनक भी है। इसके अंतर्गत बड़ी राजनीतिक मशीनरी अदृश्य बनी रह सकती है, और उसके स्थान पर हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों के स्थानीय कार्यकर्ताओं द्वारा लगातार सांप्रदायिक लामबंदी की जाती रहती है। ये छोटी सांप्रदायिक घटनाएँ 'सामान्य' (दैनिक जीवन की छोटी-छोटी बातों से उत्पन्न होने वाली), निरर्थक तथा मामूली-सी प्रतीत ज़रूर होती हैं, परंतु यह शीर्ष के सांप्रदायिक नेतृत्व को आवरण प्रदान करके उन्हें कटघरे में खड़ा होने से बचाती हैं। बड़े पैमाने पर आयोजित किए जाने वाले दंगों का मक़सद अगर मुसलमान विरोधी पहचान का तत्क्षण निर्माण करना होता है, तो छोटे एवं कम-तीव्रता वाली सांप्रदायिक घटनाओं के आधार पर की जाने वाली लामबंदी का उद्देश्य एक बार उत्पन्न होने वाली सांप्रदायिक पहचान की ज़मीनी स्तर पर निरंतरता सुनिश्चित करना होता है। इस लेख की दलील यह है कि 2002 के बाद किसी भी एक बड़े दंगे के न होने के पीछे का कारण महज़ चुनावी प्रयोजन का अभाव नहीं था, बल्कि ऐसा होना एक विशेष राजनीतिक स्थिति की ख़ासियत पर भी निर्भर था। दरअसल, गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री के लिए किसी बड़े दंगे का होना उसकी भविष्य की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं के लिए नुक़सानदेह हो सकता था

यह लेख चार भागों में विभक्त है। पहला भाग औपनिवेशिक काल से लेकर अस्सी और नब्बे के दशकों तक अहमदाबाद में सांप्रदायिक पहचान के निर्माण का ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करता है। साथ ही इस हिस्से में चार कारकों की पहचान की गई है जिनके परिणामस्वरूप सांप्रदायिक पहचान का निर्माण हुआ। दूसरा भाग 2002 के बाद एक नए विमर्श — मोदित्व के निर्माण की चर्चा करता है जो कि हिंदुत्व मॉडल की परिष्कृति है। तीसरा भाग, 2012 से 2014 के बीच अहमदाबाद में किए गए फ़ील्डवर्क पर आधारित है। यह फ़ील्डवर्क दिखाता है कि किस प्रकार निरंतर होने वाली सांप्रदायिक घटनाओं के द्वारा सांप्रदायिक ध्रुवीकरण को जीवित रखा गया है। चौथा और अंतिम भाग निष्कर्ष है।

I. अहमदाबाद में सांप्रदायिक पहचान का निर्माण

2002 में गोधरा रेलवे स्टेशन पर घटित घटनाओं के बाद हुई जवाबी हिंसा ने सबसे गम्भीर रूप गुजरात के अहमदाबाद शहर में लिया था।[1] लेकिन ऐसा नहीं था कि इस शहर ने दंगे पहली बार देखे हों। यहाँ पर पहला हिंदू-मुसलमान दंगा 1969 में हुआ, उसके बाद अस्सी और नब्बे के दशकों में फिर लगातार दंगे हुए। दरअसल, दंगों के बार-बार होने के कारण अहमदाबाद को एक दंगा-ग्रस्त शहर माना गया है।[2]

अहमदाबाद में जातीय पहचान हमेशा से सांप्रदायिक रंग में रँगी हुई नहीं थी। जब तक सांप्रदायिकता अनुपस्थित रही, शहर में उस तरह की हिंसा से जुड़ी घटनाएँ कम देखी गयीं। परंतु ऐतिहासिक रूप से कई कारकों के हस्तक्षेप के कारण हिंदू-मुसलमान पहचानें अपनी सौम्यता खोती चली गईं। नतीजतन, शहर में सांप्रदायिक हिंसा बढ़ने लगी।

अहमदाबाद शहर हिंदू-मुसलमान मिल मज़दूरों का घर था जो यहाँ के कपड़ा मिलों में काम करने आए थे। कपड़ा मिल 1980 के दशक तक शहर की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार था।[3] मज़दूरों को मिलों में उनकी धर्म और जाति के अनुसार काम मिलता था, साथ ही उनके रहने का स्थान भी इस पहलू से अछूता नहीं था। फिर भी मज़दूरों पर अपनी धर्म और जाति संबंधी पहचान का असर नहीं था।[4] श्रमिकों के रूप में उनकी सामूहिक और एकरूप पहचान उनकी जातिगत और

[1] साबरमती एक्सप्रेस ट्रेन 27 फ़रवरी, 2002 को उत्तर प्रदेश के अयोध्या शहर से कारसेवकों को ले कर लौट रही थी. यह ट्रेन गुजरात के गोधरा स्टेशन पर विराम के लिए रुकी. विराम के दौरान कारसेवकों ने मुसलमान खोका मालिकों को परेशान किया. इसके बाद मुसलमानों ने एक अफ़वाह के आधार पर कि कारसेवकों ने दो मुसलमान लड़कियों का अपहरण कर लिया है, ट्रेन पर हमला कर दिया. हाथापाई के दौरान ट्रेन की बोगी एस-6 में आग लग गई, जिससे 59 यात्रियों (ज़्यादातर कारसेवकों) की मौत हो गई. गोधरा स्टेशन पर घटनाओं की ख़बर मिलने के तुरंत बाद हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों ने पूरे गुजरात में बंद का आह्वान किया. उन्हें गुजरात की भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) सरकार का समर्थन भी प्राप्त था. अगले दिन 28 फ़रवरी, 2002 को गुजरात के अधिकांश हिस्सों में मुसलमानों पर बदले में हमले शुरू हो गए.

[2] आशुतोष वार्ष्णेय (2002) : 7.

[3] 1861 में रणछोड़लाल छोटालाल नामक ब्राह्मण व्यापारी ने शहर में पहली भाप द्वारा संचालित सूती कपड़ा मिल की स्थापना की. इसके बाद शहर कपड़े के केंद्र के रूप में परिवर्तित हो गया. छोटालाल को अनेक बनिया व्यापारियों का भी आर्थिक सहयोग मिला, परिणामस्वरूप 1861 में अहमदाबाद क़ताई और बुनाई नामक कम्पनी की स्थापना की गई.

[4] कपड़ा मिल में दो विभाग थे : कताई विभाग, जिसमें अधिकांशतः निचली जातियों के लोग जैसे वंकार और चमार काम करते

धार्मिक पहचान पर हावी थी। मज़दूर वर्ग की एकजुटता ने भी सांप्रदायिक पहचान को प्रभावी होने से रोका था। साथ ही उनके बीच भाईचारे की भावना ने इसमें अपनी भूमिका निभाई थी। परंतु आगे चल कर चार कारकों के हस्तक्षेप के कारण मज़दूरों के बीच सांप्रदायिक पहचान उभरती चली गई। ये थे : गांधी की भूमिका, हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों की भूमिका, आर्थिक प्रक्रियाओं की भूमिका और दंगों की पुनरावृत्ति।

गांधी की भूमिका : अहमदाबाद में गांधी के आगमन से पहले धर्म मज़दूर वर्ग की पहचान का मुख्य आधार नहीं था। हिंदू-मुसलमान मज़दूर अपनी माँगें पूरी न होने पर मिल मालिकों के ख़िलाफ़ सामूहिक रूप से हड़ताल करते थे। मज़दूर वर्ग की जुझारू क्षमताओं को भाँपते हुए मिल मालिकों ने गांधी से आग्रह किया कि वे अहमदाबाद में निवास करें। मालिकों का मानना था कि गांधी के उपदेश मज़दूर वर्ग की उग्रता को कम कर देंगे। गांधी का विचार था कि मज़दूर वर्ग की आक्रामकता उस राष्ट्रीय एकता के लिए ख़तरा है जिसके निर्माण का वे प्रयास कर रहे थे। गांधी ने अपने अभियान में हिंदू धर्म से जुड़ी उन नसीहतों का इस्तेमाल किया जो अहिंसा और सहिष्णुता पर आधारित थीं। उनके प्रयासों ने न केवल मज़दूरों की आक्रामकता कम की, साथ ही टेक्सटाइल लेबर एसोसिएशन (टीएलए) पर गांधी के प्रभाव ने मज़दूरों के बीच सांप्रदायिक भावनाओं को भी जन्म दिया।[5] मज़दूरों के बीच किए गए सामाजिक कार्यों में गांधी ने जिन हिंदू-सिद्धांतों का सहारा लिया, उसने मज़दूरों में एक हिंदू पहचान को आकार देने में आधारभूत भूमिका निभायी। लेकिन यह पहचान मुसलमानों के ख़िलाफ़ नहीं थी।[6] गांधी ने हिंदू-मुसलमान एकता के लिए भी काम लिया। लेकिन कुल मिला कर उनकी राजनीति ने सांप्रदायिक तर्ज़ पर मज़दूरों को बाँट दिया। यह अलग बात है कि गांधी की यह मंशा कभी नहीं थी। गांधी द्वारा प्रचारित हिंदू-मूल्यों को बाद में कुछ ऐसी शक्तियों द्वारा तोड़ा-मरोड़ा गया जिन्हें गांधी के तरीक़े स्त्रैण और दुर्बल लगते थे। साथ ही इन शक्तियों का यह भी मानना था कि हिंदू राष्ट्र के शत्रुओं से लड़ने के लिए गांधी के तरीक़े अपर्याप्त हैं।[7] इस धारणा ने धर्म के इर्द-गिर्द राजनीति को उग्रवादी

थे. और बुनाई विभाग, जिसमें मुसलमानों की संख्या ज़्यादा थी. मिल में काम का विभाजन पवित्रता और प्रदूषण की अंतर्निहित धारणाओं पर आधारित था.

[5] टेक्सटाइल लेबर एसोसिएशन (टीएलए) की स्थापना 1920 में हुई थी. इसे *मजूर* (गुजराती में, मज़दूर) महाजन संघ भी कहा जाता था. इसकी स्थापना का तात्कालिक कारण 1918 की मिल मज़दूरों की हड़ताल थी जो वेतन और बोनस में वृद्धि की माँगों को लेकर मिल मालिकों के ख़िलाफ़ शुरू की गई थी. गांधी के हस्तक्षेप के बाद यह हड़ताल समाप्त की गई, परिणामस्वरूप मिल मालिक और मज़दूर समझौते के क़रीब पहुँचे. टीएलए मज़दूरों के भविष्य की रणनीति तय करने का एक मंच था. शुरुआत से ही यह एक गांधीवादी संघ था जिसका उद्देश्य मज़दूरों को शांत करना था, ताकि मिल मालिकों के साथ टकराव के बजाए समझौते का रास्ता निकाला जा सके.

[6] कई मुसलमान मज़दूरों को लगता था कि गांधी और उनका संघ केवल हिंदू मज़दूरों को ही संबोधित कर रहा था और मुख्यतः हिंदू लोकाचार पर आधारित था. उदाहरण के लिए 1928 में टीएलए ने *समाज सुधारना* नामक संघ की स्थापना की जिसमें मुख्य रूप से हिंदू मज़दूरों को आकर्षित करने वाले कार्यकलाप किये गए। जैसे, मांस और शराब का परहेज़, भजन गायन और अखाड़ों के खेल में भाग लेना. देखें, जान ब्रेमन (2004) : 54-56.

[7] हिंदू राष्ट्रवादियों को गांधीवादी तरीक़े नापसंद थे, ख़ासतौर पर विरोध के नैतिक तरीक़े के रूप में अहिंसा पर गांधी का ज़ोर.

रंग देने का मार्ग प्रशस्त किया। ध्यान रहे कि जिस समय गांधी काम कर रहे थे, इस प्रकार के धार्मिक उग्रवाद का पूर्ण अभाव था।

हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों की भूमिका : कुछ हिंदुत्व-आधारित दलों के सक्रिय होते ही अहमदाबाद की राजनीति में सांप्रदायिक पहचान ठोस और गहरी होती चली गई। उदाहरण के लिए साठ के दशक के दौरान भारतीय जनसंघ शहर की राजनीति में सक्रिय था। यह पार्टी उच्च एवं मध्यम वर्ग के हिंदुओं के बीच लोकप्रिय थी। पार्टी ने शहर में मूल्य वृद्धि और पानी की कमी जैसे मुद्दों पर कई बार हड़ताल और आंदोलन किये। इस पार्टी के राष्ट्रवादी रुख़ और हिंदुत्व पर ज़ोर देने के कारण कई युवक उसके प्रति आकर्षित हुए।[8] भारतीय जनसंघ की भाँति अन्य हिंदुत्व-आधारित दलों (जैसे हिंदू महासभा, महागुजरात जनता परिषद् और राम राज्य परिषद् जिन्होंने गुजरात में अपने चुनावी कैरियर की शुरुआत ही की थी) ने सांप्रदायिक हिंसा को उच्च जाति के हिंदुओं के बीच अपनी प्रासंगिकता स्थापित करने के लिए एक अवसर के रूप में देखा। उच्च जातियाँ पारंपरिक रूप से कॉन्ग्रेस पार्टी को अपना वोट देती थीं। इस दिशा में पहला प्रयास 1969 में किया गया जब राष्ट्रीय-स्तर पर कॉन्ग्रेस पार्टी में पैदा हुई फूट ने इन पार्टियों को हिंसा भड़काने और हिंदू-मुसलमान के बीच संबंधों का ध्रुवीकरण करने का अवसर प्रदान किया। 1969 के दंगों के दौरान मिल क्षेत्रों में रहने वाले मज़दूरों के बीच हिंसा हुई और सौ मज़दूरों की जान चली गई। भले ही इस दंगे ने एक हद तक मज़दूरों में सांप्रदायिक भावनाओं को पैदा किया, परंतु फिर भी उनके पारस्परिक संबंध पूरी तरह से सांप्रदायिक नहीं हो सके। इसके पीछे दो कारण थे : पहला, प्रारम्भिक रूप से हिंदुत्व-आधारित दलों ने केवल उच्च जातियों (न कि निचली जातियों) को लामबंद किया, हालाँकि 1980 के बाद भाजपा की अहमदाबाद की राजनीति में सक्रियता ने इसे बदल दिया; और दूसरा, टीएलए से मिले सहयोग द्वारा नगरपालिका-स्तर पर कॉन्ग्रेस के प्रभुत्व ने सांप्रदायिकता को जड़ पकड़ने से रोका।

अस्सी के दशक में शहर की राजनीति में भाजपा के सक्रिय होने के बाद मज़दूरों के आपसी संबंध अधिक सांप्रदायिक होने लगे। इसका नतीजा दंगों की निरंतरता में निकली। कॉन्ग्रेस पार्टी उस समय तक नगरपालिका की राजनीति पर हावी थी। वह व्यावहारिक कारणों के चलते निचली जाति के हिंदुओं और मुसलमानों में हिंसक झड़प होने से रोकती थी। इसके दो कारण थे : पहला, हिंसा होने से कपड़ा उद्योग और मिल मालिकों को नुक़सान पहुँचता था। वे कॉन्ग्रेस के क़रीबी थे। दूसरा, दंगे होने से मज़दूरों के वोट बँट सकते थे। कॉन्ग्रेस को डर था कि कहीं ये वोट उन हिंदुत्व-आधारित पार्टियों को न मिल जाएँ जो शहर में अपनी पकड़ को मज़बूत करती जा रही थीं। नगरपालिका में

राष्ट्रवादियों का मानना था कि हिंदू धर्म की पुनर्व्याख्या की जानी चाहिए ताकि यह गांधी की व्याख्या से आज़ाद हो सके. इस दिशा में पहला क़दम 1922 में निष्क्रिय हिंदू महासभा को पुनर्सक्रिय करना था. 1923 में विनायक दामोदर सावरकर ने *हिंदुत्व : हू इज़ अ हिंदू* का प्रकाशन किया जिसमें उन्होंने हिंदुत्व और हिंदू धर्म की भिन्नताओं पर ज़ोर देते हुए हिंदू पहचान का गठन करने की एक व्यापक परिभाषा प्रदान की. 1925 में केशवराव बलिराम हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) की स्थापना की. देखें, चेतन भट्ट (2001) : 118.

[8] घनश्याम शाह (1974) : 1439.

कॉन्ग्रेस के कमज़ोर पड़ने से भाजपा को मज़बूती मिली। 1980 के दशक तक कॉन्ग्रेस टीएलए के साथ अपने सम्पर्कों के कारण नगरपालिका-स्तर पर अच्छा प्रदर्शन करती थी और मज़दूरों के वोटों को लेकर आश्वस्त थी। परंतु अस्सी के दशक में कपड़ा मिलों के बंद होने और टीएलए के पतन के बाद कॉन्ग्रेस ने अपना एकमात्र संगठनात्मक सहयोगी खो दिया जिससे अब तक पार्टी लाभान्वित हो रही थी।[9] इस दौरान सांप्रदायिकीकरण की राजनीति को गति मिली; भाजपा को (हिंदुत्व-आधारित दलों के विपरीत) निचली जातियों के वोटों का मूल्य समझ में आया। भाजपा के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए कॉन्ग्रेस ने 'खाम' (क्षत्रिय + हरिजन + आदिवासी + मुसलमान) नामक नई चुनावी रणनीति तैयार की जिसमें निचले और पिछड़े समुदायों को आरक्षण देने का वादा करके उन्हें एक साथ लाने की कोशिश की गई।[10] कॉन्ग्रेस पार्टी के इस क़दम ने उसके पारम्परिक समर्थकों, उच्च एवं मध्यम जाति के समुदायों को निराश किया, परिणामस्वरूप उन्होंने अपना समर्थन भाजपा में स्थानांतरित कर दिया।[11] 1985 का जातिगत दंगे को, जो उच्च और पिछड़ी जाति के समुदायों के बीच आरक्षण के मुद्दे को लेकर शुरू हुआ था, उसे भाजपा ने बड़ी कुशलतापूर्वक एक सांप्रदायिक दंगे में तब्दील करके उच्च जाति का पिछड़ी जाति के प्रति आक्रोश मुसलमानों की ओर घुमा दिया।[12] वे उच्च जातियाँ जिनकी आर्थिक स्थिति निचली जातियों के समान थी, राजनीतिक
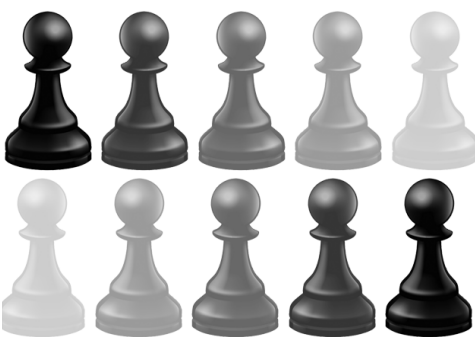
1980 के दशक तक कॉन्ग्रेस टीएलए के साथ अपने संपर्कों के कारण नगरपालिका-स्तर पर अच्छा प्रदर्शन करती थी और मज़दूरों के वोटों को लेकर आश्वस्त थी। परंतु अस्सी के दशक में कपड़ा मिलों के बंद होने और टीएलए के पतन के बाद कॉन्ग्रेस ने अपना एकमात्र संगठनात्मक सहयोगी खो दिया जिससे अब तक पार्टी लाभान्वित हो रही थी।

[9] उदारीकरण की नीतियों का प्रभाव अहमदाबाद की अर्थव्यवस्था पर भी देखा गया. सूती कपड़ा उद्योग के पुनर्गठन को लेकर आर्थिक उपायों की शुरुआत 1985 से हुई, जब गुजरात सरकार द्वारा शुरू की गई नई टेक्सटाइल नीति ने बड़े पैमाने पर मिश्रित मिल क्षेत्र की क़ीमत पर पॉवरलूम सेक्टर और लघु उद्योग के विस्तार को प्रोत्साहित किया. मज़दूरों की मुख्य प्रतिनिधि एजेंसी होने के बावजूद, टीएलए मज़दूरों के हितों के विरुद्ध गई और उसने सरकार की उदारीकरण की नीतियों का समर्थन किया. परिणामस्वरूप, मिलों के बंद होते ही टीएलए भी निरर्थक हो गया. देखें, ब्रेमन (2004); जूड हॉवेल और उमा कमभम्पति (1999); और सुप्रिया रॉय चौधुरी (1996).

[10] खाम एक चुनावी गठबंधन के लिए परिवर्णी शब्द था, जिसमे 'क्ष' का अर्थ क्षत्रिय, 'ह' से हरिजन, 'आ' से आदिवासी और 'म' से मुसलमान. ये चार समुदाय राज्य की आबादी का 50 प्रतिशत से अधिक थे.

[11] कॉन्ग्रेस की खाम रणनीति से उच्च एवं मध्यम जातियाँ नाराज़ हो गईं क्योंकि वे सत्तर के दशक से राज्य विधानसभाओं में सत्ता में बने रहने की आदी थीं.

[12] 1985 के गुजरात विधानसभा चुनावों से महज़ दो महीने पहले माधव सिंह सोलंकी की कॉन्ग्रेस सरकार ने अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की सीमा 10 प्रतिशत से बढ़ाकर 28 प्रतिशत कर दी थी.

रूप से अनिश्चित महसूस करने लगीं। इस संदर्भ में उन्होंने मुसलमानों को, जो खाम गठबंधन का हिस्सा थे, अपने राजनीतिक प्रभुत्व के लिए एक ख़तरे के रूप में देखा और अपनी धारणा को जातिगत दृष्टिकोण से हटा कर सांप्रदायिक दृष्टिकोण की ओर ले गए। परिणामस्वरूप मुसलमान बलि का बकरा बन गए।[13] हिंदुत्ववादियों के लिए 1985 के दंगे को एक सांप्रदायिक मोड़ देना आवश्यक था, क्योंकि आरक्षण हिंदू समाज को जाति के आधार पर बाँट सकता था, जबकि भाजपा चुनाव जीतने के लिए निचले और पिछड़े समुदायों को साथ लाने का प्रयास कर रही थी। 1985 के दंगों के दौरान क़रीब 2500 मुसलमानों की दुकानों को नुक़सान पहुँचाया गया, 1500 मुसलमानों की दुकानें लूटी और जलाई गयीं और क़रीब सौ मुसलमानों की हत्या की गई। इस दंगे ने लगभग 12,000 मुसलमानों को बेघर कर दिया और तक़रीबन 900 मुसलमान गिरफ़्तार किए गए।[14]

निचली जाति और पिछड़े समुदायों का समर्थन प्राप्त करने के लिए भाजपा ने अस्सी और नब्बे के दशकों में धार्मिक लामबंदी का सहारा लिया। इस दौरान हिंदू समुदाय को एकजुट करने के लिए भाजपा के कार्यकलापों में ज़बरदस्त गतिशीलता देखी गई। यात्राओं द्वारा धार्मिक लामबंदी करने से न केवल निचली जातियों को हिंदू एकता के दायरे में लाने का प्रयत्न हुआ, बल्कि इनका प्रयोग निचली जाति और मुसलमानों के बीच संबंधों को तोड़ने के लिए भी किया गया। मंडल आयोग की रिपोर्ट के क्रियान्वयन, रामजन्मभूमि आंदोलन के इर्द-गिर्द की गई धार्मिक लामबंदी और बाबरी मस्जिद का विध्वंस जैसी राष्ट्रीय-स्तर घटनाक्रमों के कारण 1990 और 1992 में शहर में फिर से हिंदू-मुसलमान हिंसा भड़क उठी। गुजरात से शुरू हुई रथ यात्रा (जो यहाँ के अधिकांश गाँवों व क़स्बों से गुज़री थी) ने 1990 में अहमदाबाद में सांप्रदायिक भावनाओं और दंगों के प्रोत्साहन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस रथ यात्रा के दौरान हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों ने मुसलमानों के विरुद्ध आपत्तिजनक पर्चों का बड़े-पैमाने पर वितरण किया जिसके परिणामस्वरूप सांप्रदायिक ताक़तों को बढ़ावा मिला।[15] रथ यात्रा के दौरान अहमदाबाद के मिश्रित मज़दूर-बहुल इलाक़ों, जैसे रखियाल, गोमतीपुर, दानिलिमड़ा, बेहरामपुरा और शाहपुर में दंगे भड़क उठे।[16] इन इलाक़ों में निचली जातियों और मुसलमानों ने एक-दूसरे पर देसी बंदूक़ों-कट्टों से गोलियाँ चलाईं और तेज़ाब और पेट्रोल बम फेंके।[17] त्रिशूल, तलवार, भाले और पेट्रोल बम से लैस दो सौ से एक हज़ार दंगाइयों ने मुसलमानों पर हमले किये। साथ ही साथ 'मुसलमान को काटो मारो' के नारे भी लगाए गए।[18] रथ यात्रा के दौरान सांप्रदायिक हिंसा भड़काने के आरोप में लाल कृष्ण आडवाणी की गिरफ़्तारी के बाद हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों ने रामजन्मभूमि आंदोलन को आगे बढ़ाया और छह दिसम्बर, 1992 को अयोध्या में स्थित बाबरी मस्जिद को ध्वस्त कर दिया। इस विध्वंस ने पूरे भारत में सांप्रदायिक हिंसा

[13] ऑरनिट शनि (2005) : 888.

[14] वही.

[15] कंसर्न्ड सिटिज़न्स ट्रिब्यूनल (2002) : 15.

[16] हॉवर्ड स्पोडेक (2012) : 249.

[17] वही.

[18] क्रिस्तॉफ़ जैफ़्रलो और लॉरेंट गेयर (2012) : 57.

को भड़का दिया। अकेले गुजरात के सबसे प्रभावित शहरों — अहमदाबाद और वड़ोदरा में 75 फ़ीसदी मौतें हुईं।[19] अहमदाबाद के विभिन्न हिस्सों में मुसलमानों को मारा गया और मिश्रित इलाक़ों को काफ़ी लम्बे समय तक कर्फ़्यू में रखा गया। इन सभी घटनाओं ने सांप्रदायिक स्थिति को संगीन कर दिया। निचली जातियाँ पहले स्वयं को केवल धार्मिक दृष्टि से नहीं देखती थीं। लेकिन वे अस्सी के दशक से हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों के क़रीब आ चुकी थीं। यात्रा में उनकी भागीदारी ने अहमदाबाद में हिंदुत्व के आधिपत्य-निर्माण का संकेत दिया।

आर्थिक प्रक्रियाओं की भूमिका : उदारीकरण के आर्थिक प्रभावों ने सांप्रदायिक पहचान के निर्माण को और आसान बना दिया। कपड़ा मिलों का बंद होना और मज़दूर संघ (टीएलए) के पतन ने मज़दूरों की रही-सही एकजुटता को तोड़ दिया। साथ ही साथ मज़दूरों का आर्थिक हाशियाकरण भी बढ़ा। उदारीकरण की नीतियों से उत्पन्न बेरोज़गारी ने निचली जाति के मज़दूरों को हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों की ओर आकर्षित किया क्योंकि इन संगठनों ने निचली जातियों को संरक्षण से जुड़े फ़ायदों और हिंदू समुदाय में उनके समावेश का आश्वासन दिया था।[20] परिणामस्वरूप, मज़दूरों की पहचान में परिवर्तन आ गया और वे एक-दूसरे को सांप्रदायिक नज़रिए से देखने लगे।

दंगों की पुनरावृत्ति की भूमिका : लगातार होते दंगों के कारण सांप्रदायिक पहचान और गहरी हो गई। दंगे न केवल सांप्रदायिक पहचान का निर्माण करते हैं, बल्कि साथ ही इसे काफ़ी लम्बे समय तक ठोस भी बना देते हैं। हालाँकि, अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि दंगे शत्रुतापूर्ण पहचान का निर्माण करते हैं, परंतु इसकी पुनरावृत्ति उस पहचान को और भी दृढ़ आकार दे देती है। अहमदाबाद के संदर्भ में सांप्रदायिक पहचान जो धीरे-धीरे जड़ पकड़ रही थी और भी जम गई, जब अस्सी और नब्बे के दशकों के दौरान दंगे लगातार होने लगे।

II. मोदित्व का चरण (2003 से 2014)

अपने सांस्कृतिक एवं चुनावी लक्ष्यों को साकार करने के लिए यह महत्त्वपूर्ण था कि हिंदू राष्ट्रवादी संगठन हिंदू-मुसलमान टकराव को बनाए रखने के साथ-साथ उसका पोषण भी करें। जब धर्म के आधार पर खड़ी की गई मुख्य दरार पहले की तरह संगीन नहीं रह पाती, तो चुनाव जीतने के लिए नृजातीय हिंसा एक तंत्र के रूप में कार्य करती है। इसके द्वारा एक प्रमुख पहचान (इस संदर्भ में सांप्रदायिक पहचान) का आह्वान किया जाता है। मैंने पिछले भाग में बताया है कि अहमदाबाद में पहले से सांप्रदायिक विमर्श की मौजूदगी नहीं थी। इस पहचान का निर्माण समय के साथ हुआ है,

---

[19] आशुतोष वार्ष्णेय (2002) : 97.

[20] कंचन चंद्रा के अनुसार लोकतंत्र में निर्वाचित अधिकारियों के पास सत्ता होती है और वे राज्य द्वारा नियंत्रित व्यापक संसाधनों का मतदाताओं के बीच 'व्यक्तिगत' आधार पर वितरण करते हैं तथा राज्य की नीति के कार्यान्वयन में स्वनिर्णय लेते हैं. देखें, कंचन चंद्रा (2004) : 6.

जिसके कारण तुच्छ घटनाओं को भी दंगे का स्वरूप दिया जा सका।[21] सांप्रदायिक विमर्श को पूर्वनिर्धारित मान कर हम यह नहीं समझ पाते कि एक बार निर्मित विरोधी पहचान समय के साथ कमज़ोर पड़ सकती है, यदि ज़मीनी स्तर पर ध्रुवीकरण के प्रयास भी ढीले पड़ जाएँ।

1990 और 1992 के दंगों के बाद शहर ने 2002 में फिर से सांप्रदायिक हिंसा देखी। हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों ने 2000 में हुए स्थानीय चुनावों में ख़राब प्रदर्शन के लिए भाजपा को ज़िम्मेदार ठहराया था।[22] भाजपा ने इन चुनावों में सभी ज़िला पंचायतों और 80 प्रतिशत तालुक़ा पंचायतों में सत्ता खो दी थी। साथ ही शहरी-स्तर पर पार्टी छह नगर निगमों में से पाँच में हार गई थी, जहाँ वह लगभग दो दशकों से सत्ता में थी। भाजपा अहमदाबाद नगर निगम चुनाव में भी हार गई जहाँ वह 1987 से लगातार सत्ता में थी जब उसने कॉन्ग्रेस के नगरपालिका में स्थापित आधिपत्य को समाप्त किया था। लेकिन, इस चुनाव परिणाम ने संकेत दिए कि सांप्रदायिक ध्रुवीकरण की राजनीति फीकी पड़ने लगी है। ज़ाहिर है कि सत्ता में पुनर्वापसी के लिए ध्रुवीकरण की रणनीति को तेज़ करने की आवश्यकता थी। भाजपा इस बात से भी चिंतित थी कि बीते चुनाव में निचली जातियों ने भारी संख्या में कॉन्ग्रेस को अपना वोट दिया था। पार्टी को यह संकेत मिल रहा था कि निचली जातियों और मुसलमानों का गठबंधन उभरने वाला है। इस चुनौती से निपटने के लिए भाजपा ने सांप्रदायिकीकरण की रणनीति को और तेज़ किया। भले ही 1980 के बाद पहचान का सांप्रदायिकीकरण शुरू हो गया था, परंतु एक लम्बे अंतराल तक इसके अभाव ने पूर्वनिर्मित हिंदू-मुसलमान विभाजन को कमज़ोर कर दिया था। परिणामस्वरूप, दंगे भड़काए गए जिससे चुनाव जीता जा सके। 2002 का दंगा भी चुनाव जीतने के उद्देश्य से प्रेरित था। स्टीवन आई. विल्किंसन के अनुसार नृजातीय दंगे 'नेताओं द्वारा एक स्पष्ट चुनावी उद्देश्य प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किए जाते हैं। दंगे इस समस्या का हल होते हैं कि मतदाताओं के बीच नृजातीय मुद्दों और पहचान को कैसे बदला जाए ताकि एक जीत प्राप्त करने वाले राजनीतिक गठबंधन का निर्माण किया जा सके।'[23]

स्थानीय चुनाव परिणाम भाजपा के लिए एक आईने के रूप में थे। पार्टी यह भाँप गई थी कि उसके लिए मार्च, 2002 में होने वाले विधानसभा चुनावों को जीतने की सम्भावना कम थी। गोधरा में घटित घटनाओं ने 2002 के दंगों के बहाने के साथ-साथ एक ट्रिगर के रूप में भी काम किया। गुजरात के अधिकांश हिस्सों में दंगे हुए। पर अहमदाबाद शहर सबसे अधिक प्रभावित रहा। यहाँ मुसलमानों पर प्रतिहिंसा कई महीनों तक जारी रही, जबकि राज्य के शेष हिस्सों में हिंसा थम गई थी। 2002 के गुजरात दंगे पूर्वनियोजित थे। इसमें भाजपा के टिकट पर चुने गए प्रतिनिधि, राज्य और स्थानीय-स्तर पर भाजपा

---

[21] पॉल आर. ब्रास का मानना है कि भारतीय समाज में सांप्रदायिक विमर्श की प्रधानता है, परंतु उनका विश्लेषण यह नहीं बताता कि उनके शोध क्षेत्र अलीगढ़ में इस विमर्श का जन्म और पोषण कैसे हुआ और कैसे यह समय के साथ ठोस होता गया. ब्रास स्वतंत्र भारत में सांप्रदायिकता के विमर्श का एक सामान्य चित्र प्रस्तुत करते हैं. वे यह नहीं बताते कि अलीगढ़ में इस विमर्श ने कैसे अपनी जड़ जमाई और पाँव पसारे. देखें, पॉल आर. ब्रास (2003) : 24.

[22] यह दर्शाता है कि चुनाव में हार को लेकर संघ की समझ भाजपा के भीतर के वर्गों की समझ पर हावी थी, जिन्होंने हार के लिए संघ को ज़िम्मेदार ठहराया था.

[23] स्टीवन आई. विल्किंसन (2004) : 1.

के कार्यकर्ता, कई तरह के स्वामी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उससे संबंधित संगठनों के कार्यकर्ता और पुलिस शामिल थी। अकेले अहमदाबाद शहर में क़रीब दो हज़ार लोग बेरहमी से मारे गए और 1,40,000 लोग बेघर हो गए।[24] मुसलमान समुदाय को आर्थिक रूप से अपंग बना दिया गया। लगभग 1100 मुसलमान भोजनालय और 15,000 मुसलमान व्यावसायिक संस्थाएँ नष्ट कर दी गयीं।[25] मुसलमान महिलाओं के ख़िलाफ़ यौन हिंसा और उत्पीड़न 2002 के दंगों का सबसे भयावह पहलू था।[26] दंगाई गैस सिलिंडर, तलवार और पेट्रोल बम से लैस थे। साथ ही उनके पास मतदाताओं की सूची भी थी जिसका उपयोग उन्होंने मुसलमान घरों और दुकानों की शिनाख़्त करने के लिए किया।

स्टीवन आई. विल्किंसन के अनुसार नृजातीय दंगे नेताओं द्वारा एक स्पष्ट चुनावी उद्देश्य प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किए जाते हैं। दंगे इस समस्या का हल होते हैं कि मतदाताओं के बीच नृजातीय मुद्दों और पहचान को कैसे बदला जाए ताकि एक जीत प्राप्त करने वाले राजनीतिक गठबंधन का निर्माण किया जा सके।

दंगों के बाद भाजपा के चुनाव प्रचार ने यह स्पष्ट कर दिया कि दंगे चुनाव जीतने के उद्देश्य से प्रेरित थे। पूरा चुनाव अभियान गोधरा त्रासदी को भुनाने पर केंद्रित था।[27] भाजपा और हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों द्वारा चुनाव होने तक निरंतर सांप्रदायिक प्रचार से ध्रुवीकरण को तेज़ किया गया जिससे कि निचली जातियों और मुसलमानों के बीच रही-सही एकता को तोड़ा जा सके। गोधरा में हुई घटनाओं का फ़ायदा भाजपा को चुनाव में जीत के तोहफ़े के रूप में मिला। भाजपा ने दिसम्बर, 2002 के विधानसभा चुनावों में 49.8 प्रतिशत वोट प्राप्त किए और 181 सीटों में से 126 सीटों पर अपनी जीत का परचम लहराया। वहीं कॉन्ग्रेस ने 39.3 प्रतिशत वोट के साथ केवल 51 सीटें जीतीं।[28] नरेंद्र मोदी, जिन्हें भाजपा के राष्ट्रीय नेतृत्व और संघ द्वारा 7 अक्टूबर, 2001 को गुजरात के मुख्यमंत्री के रूप में बिना कोई चुनाव लड़े नियुक्त किया गया था, उनका मुख्यमंत्री के रूप में चयन किया गया।[29]
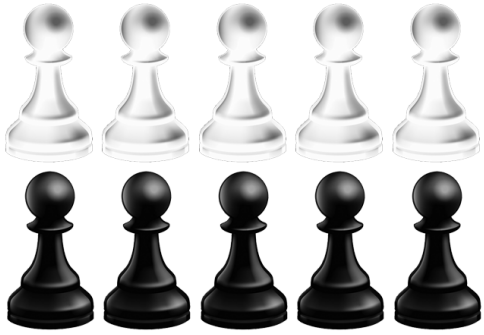
[24] हॉवर्ड स्पोडेक (2012) : 256.

[25] फ्राँसिन आर. फ्रेंकेल (2005) : 743.

[26] तनिका सरकार (2002).

[27] देखें, नलिन मेहता (2006) और डीओने बुंशा (2006).

[28] संजय कुमार (2003) : 270.

[29] भाजपा के राष्ट्रीय नेतृत्व को 2001 में मुख्यमंत्री केशुभाई पटेल की अगुवाई में चुनाव जीतने की संभावना कम लग रही थी. परिणामस्वरूप मोदी को गुजरात की कमान सौंपी गई जो उस समय पार्टी के राष्ट्रीय सचिव थे. यह नब्बे के दशक में 'सामाजिक इंजीनियरिंग' की नीति को पार्टी द्वारा अपनाए जाने का एक उदाहरण था, जिसने मोदी, जो मोद घांची अथवा एक छोटे से पिछड़े समुदाय से आते हैं, उन्हें गुजरात के मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त किया गया. जैफ्रलो बताते हैं कि नब्बे के दशक तक भाजपा ने 'अप्रत्यक्ष मंडलीकरण' की रणनीति अपनाई थी, जिसके द्वारा पार्टी निचली जातियों का प्रतिनिधित्व करने

लेकिन, शीघ्र ही जीत का जश्न असहजता और अपमान का कारण बन गया। 2002 के दंगों को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न तबक़ों द्वारा मोदी की घोर निंदा की गई। 2002 के दंगों ने मोदी और गुजरात दोनों की छवि को गहरी क्षति पहुँचाई थी। मोदी को लगातार मीडिया और शैक्षणिक समुदाय में एक सांप्रदायिक नेता, हिंदुत्व पोस्टर बॉय, ध्रुवीकरण की राजनीति करने वाले नेता के रूप में संबोधित किया जाने लगा। गुजरात की पहचान प्रारम्भ से ही गांधीवादी सिद्धांतों और मूल्यों से प्रभावित मानी जाती थी, परंतु अब उसे एक दंगाग्रस्त राज्य के रूप में चिह्नित किया जाने लगा जहाँ अल्पसंख्यक समुदाय, विशेषकर मुसलमान, निरंतर भय में रहते हैं। इसलिए 2002 के दंगों से जुड़े दागों को अपने दामन से मिटाने के लिए मोदी ने गुजरात की एक अलग कहानी गढ़ी जिसमें दंगों को कहानी का हिस्सा नहीं बनाया गया। कहानी के नायक मोदी ने रणनीतिक रूप से विकास और गुजराती अस्मिता (जो आत्मगौरव की पहचान से जुड़ा है) का लयबद्ध आह्वान किया और अपनी राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं को साकार करने के लिए इन विषयों को उछाला। मोदी को यह आभास हुआ कि भविष्य में एक राज्यव्यापी दंगा उनकी छवि को नुक़सान और उनकी एक सशक्त राष्ट्रीय नेता बनने की महत्त्वाकांक्षा को क्षति पहुँचा सकता है। यह हिंदुत्व मॉडल का परिष्करण अर्थात् एक नए विमर्श, मोदित्व, के निर्माण का संदर्भ था।

'मोदित्व' शब्द का उपयोग सबसे पहले प्रलय क़ानूनगो और अदनान फ़ारूक़ी ने अपने लेख में किया था। इसमें वे मोदित्व को गुजरात में केवल मोदी की चुनावी जीत के रूप में नहीं बल्कि एक ऐसी अद्भुत घटना के रूप में देखते हैं जिसमें राष्ट्रीय राजनीति पर अपनी पकड़ बनाने की क्षमता थी।[30] मेरा मानना है कि एक मज़बूत राष्ट्रीय नेता के रूप में उभरने के साथ-साथ मोदित्व हिंदुत्व के मॉडल का परिशोधन भी है। यह हिंदुत्व को उसकी सामान्य गतिविधियाँ (विशेषतः ज़मीनी स्तर पर सांप्रदायिक ध्रुवीकरण) जारी रखने की छूट देता है लेकिन इसके साथ ही इसे जनता के ध्यान और जाँच से बचाने के लिए एक बड़े दंगे का स्वरूप लेने से भी रोकता है। यह केवल बड़े दंगों को होने से रोकता है पर इसके स्थान पर स्थानीय, छोटे और कम-तीव्रता वाली सांप्रदायिक घटनाओं को जारी रखता है। यह समकालीन सांप्रदायिक राजनीति के एक नए विन्यास की ओर इंगित करता है। प्रताप भानु मेहता के शब्दों में, 'एक बड़ा दंगा दिमाग में बस जाता है और साथ ही एक नुक़सानदेह शीर्षक को भी जन्म देता है। परंतु धीमी गति में फैला दंगा, और विभिन्न राज्यों में इससे त्रस्त पीड़ित, एक दैनिक दिनचर्या के रूप में प्रतीत होते हैं। इस विन्यास का विरोध करना और भी कठिन हो जाता है।'[31] मोदी यह समझ गए थे कि हिंदुत्व और उसकी आक्रामक सांप्रदायिक विमर्श पर पूर्ण निर्भरता उन्हें उस समय राजनीति में दूर नहीं ले जा पाएगी जब वे अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और राजनीतिक आकस्मिकताओं को ध्यान में रखते हुए अपने राज्य से बाहर क़दम रखेंगे। हालाँकि हिंदुत्व को पूरी तरह छोड़ा भी नहीं जा सकता था, क्योंकि यह मोदी और

वाले दलों के साथ गठबंधन करती थी. परंतु, 'सामाजिक इंजीनियरिंग' की नीति अपनाने के बाद, पार्टी ने कार्यकारिणी समितियों और चुनावों में निचली और अन्य पिछड़े समुदायों के उम्मीदवारों के नामांकन को शामिल करना शुरू कर दिया था. देखें, क्रिस्टॉफ़ जैफ़्रलो (2010) : 480.

[30] प्रलय क़ानूनगो और अदनान फ़ारूक़ी (2008) : 222.

[31] प्रताप भानु मेहता (2017).

गुजरात में भाजपा के लिए एक बड़ी राजनीतिक ग़लती साबित हो सकती थी। इसलिए भले ही भाजपा और संघ के स्थानीय कार्यकर्ताओं द्वारा सांप्रदायिक ध्रुवीकरण को जारी रखा गया; पर राज्य सरकार ने राज्य की पुलिस को सख़्त निर्देश दिए कि छुट-पुट सांप्रदायिक घटनाओं को हर क़ीमत पर एक बड़े दंगे में तब्दील होने से रोका जाए। यह इसलिए अनिवार्य था क्योंकि राज्यव्यापी दंगे नेताओं की राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय छवि को नुक़सान पहुँचाते हैं। वे नागरिक समाज द्वारा निरंतर जाँच के दायरे में रहते हैं और लम्बे समय तक सार्वजनिक स्मृति में बने रहते हैं।

दंगों के बाद भाजपा के चुनाव प्रचार ने यह स्पष्ट कर दिया कि दंगे चुनाव जीतने के उद्देश्य से प्रेरित थे। पूरा चुनाव अभियान गोधरा त्रासदी को भुनाने पर केंद्रित था। भाजपा और हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों द्वारा चुनाव होने तक निरंतर सांप्रदायिक प्रचार से ध्रुवीकरण को तेज़ किया गया ताकि निचली जातियों और मुसलमानों के बीच रही-सही एकता को तोड़ा जा सके। गोधरा में हुई घटनाओं का फ़ायदा भाजपा को चुनाव में जीत के तोहफ़े के रूप में मिला।

2003 से 2014 तक गुजरात में मोदित्व की कार्यप्रणाली राज्य में बड़े दंगों को रोकने का संकल्प प्रदर्शित करती है।[32] परंतु, साथ ही साथ गुजरात के विभिन्न हिस्सों में कम-तीव्रता वाली सांप्रदायिक घटनाएँ निरंतर होती रहीं। उदाहरण के लिए, अहमदाबाद, गोधरा और नवसारी में 15 जनवरी, 2003 को उत्तरायण (पतंग उत्सव) के दौरान हिंसा भड़की, जिसमें 15 लोग घायल हुए। इसके बाद नवंबर , 2003 में अफ़वाह फैली कि अहमदाबाद के जुहापुरा इलाक़े में एक अल्पसंख्यक समुदाय के व्यक्ति पर चाकू से हमला हुआ, जिसके बाद कालुपुर इलाक़े में सांप्रदायिक घटनाएँ हुई और दो लोगों की जान गई।[33] 2004 में वड़ोदरा में हिंदू और मुसलमान युवक के बीच साइकिल दुर्घटना के बाद दोनों समुदायों के समूहों ने एक-दूसरे पर पथराव शुरू कर दिया।[34] गुजरात के कई शहरों और कस्बों में पथराव और आगज़नी से जुड़ी सांप्रदायिक घटनाएँ दैनिक जीवन का हिस्सा बन गई हैं। सूचना के अधिकार के तहत मिली जानकारी के अनुसार गुजरात में 2005 से 2015 के बीच कुल 656 सांप्रदायिक घटनाएँ घटीं, जिनमें 1655 लोग घायल हुए और 76 लोगों की मौत हुई।[35]

यह तर्क भी दिया जा सकता है कि अहमदाबाद और गुजरात में बड़े दंगों को इसलिए प्रोत्साहित नहीं किया गया क्योंकि भाजपा के पास दंगा भड़काने का कोई चुनावी प्रयोजन नहीं था। भाजपा 2002 के बाद से लगातार विधानसभा और स्थानीय स्तर पर सत्ता में बनी हुई है और पार्टी ने 2000 के चुनावों की भाँति किसी बड़ी चुनावी हार का सामना भी नहीं किया है, अर्थात चुनावी प्रयोजन के अभाव के कारण पार्टी ने दंगों को बढ़ावा नहीं दिया। यह दलील स्टीवन आई. विल्किंसन के मुख्य तर्क की ओर ले जाती है। विल्किंसन के अनुसार, 'लोकतांत्रिक राज्य अल्पसंख्यकों की उस

[32] नरेन्द्र मोदी 26 मई, 2014 को भारत के चौदहवें प्रधानमंत्री बने.

[33] असग़र अली इंजीनियर (2004) : 21-24.

[34] असग़र अली इंजीनियर (2005) : 518.

[35] *द मिलि गैज़ेट* (2016).

समय सुरक्षा करते हैं जब ऐसा करना सरकारों के चुनावी हित में होता है। विशेष रूप से नेता अल्पसंख्यकों को सुरक्षा तब देंगे जब दोनों शर्तों में से कोई भी एक शर्त लागू होगी : जब अल्पसंख्यक समुदाय पार्टी के मौज़ूदा समर्थन-आधार का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा होंगे या गठबंधन सरकार में पार्टी के सहयोगियों के समर्थन का आधार होंगे; या तब जब किसी राज्य में सम्पूर्ण चुनाव प्रणाली इतनी प्रतिस्पर्धी हो, पार्टियों की प्रभावपूर्ण संख्या के संदर्भ में, शासन करने वाली पार्टी अपनी प्राथमिकताओं के बावजूद, भविष्य में अल्पसंख्यक समर्थक दलों के साथ गठबंधन बनाने को तैयार होगी।'[36] विल्किंसन ज़ोर देते हैं कि 2002 के दंगों पर गुजरात सरकार की प्रतिक्रिया उनके तर्क को सही साबित करती है। चूँकि अल्पसंख्यक समुदाय भाजपा के समर्थन के आधार का हिस्सा नहीं थे और राज्य में पार्टियों के बीच प्रतिस्पर्धा का स्तर कमज़ोर था, इसलिए पार्टी ने दंगों को बढ़ने से नहीं रोका और हिंसा को कई दिनों तक जारी भी रखा।

परंतु विल्किंसन के इस तर्क के बावजूद एक महत्त्वपूर्ण सवाल उठता है कि यदि अल्पसंख्यक समुदाय का समर्थन और पार्टियों में प्रतिस्पर्धा की डिग्री वे व्यापक परिस्थितियाँ हैं जिनके मौजूद होने पर नेता दंगों को रोकेंगे, तो फिर आख़िर क्या कारण है कि 2002 के बाद गुजरात और अहमदाबाद में कोई बड़ा दंगा नहीं देखा गया है? क्यों राज्य सरकार कम-तीव्रता वाले सांप्रदायिक संघर्षों और घटनाओं को गम्भीर अनुपात लेने से रोकती है जबकि विल्किंसन द्वारा पहचानी गई व्यापक परिस्थितियाँ गुजरात में ज्यों की त्यों बनी हुई हैं — भाजपा वर्तमान में भी अल्पसंख्यक वोटों पर निर्भर नहीं करती और राज्य में पार्टी प्रतिस्पर्धा का स्तर अब भी कमज़ोर बना हुआ है। फिर क्या कारण है कि दंगों को रोकने का प्रयास राज्य सरकार द्वारा निरंतर किया जा रहा है?

मेरा ऐसा मानना है कि चुनावी प्रयोजन तर्क के अतिरिक्त, विल्किंसन का शोध उन केसों का उल्लेख नहीं करता जहाँ उनके द्वारा पहचानी गई व्यापक संरचनात्मक परिस्थितियाँ काम नहीं करती और जब व्यक्तिगत एजेंसी संरचनात्मक एजेंसी पर हावी हो जाती है, जैसा कि गुजरात में 2002 के बाद मोदित्व के संदर्भ में देखा गया है। दंगों को रोकने की सम्भावना केवल अल्पसंख्यक वोटों या राज्य में पार्टी प्रतिस्पर्धा के स्तर पर निर्भर नहीं है, जैसा कि विल्किंसन दावा करते हैं, बल्कि यह नेताओं द्वारा पोषित राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं से भी जुड़ा है जो दंगों को अपने राजनीतिक कैरियर और भविष्य के राजनीतिक लक्ष्यों पर एक हानिकारक प्रभाव के रूप में देख सकते हैं। विल्किंसन के राज्य-स्तरीय चुनावी प्रयोजन के दावे में विशिष्ट अज्ञात परिस्थितियों का उल्लेख नहीं है जिसने गुजरात में विद्यमान उस संरचनात्मक तर्क को मात दी जिस पर विल्किंसन का दावा टिका है।

III. सांप्रदायिक घटनाओं और तनावों का सामान्यीकरण : एक दंगा-ग्रस्त और शांतिपूर्ण क्षेत्र का अध्ययन

फ़ील्डवर्क के अवलोकनों के आधार पर लेख का यह भाग तर्क देता है कि 2002 के दंगों के बाद भाजपा-संघ ने स्थानीय, छोटे और कम-तीव्रता वाली सांप्रदायिक घटनाओं द्वारा हिंदू-मुसलमान

[36] विल्किंसन (2004) : 6-7.

ध्रुवीकरण को ज़मीनी स्तर पर जीवित रखने के प्रयास किए हैं जिससे कि निचली जातियों और मुसलमानों के गठबंधन को रोका जा सके। ये सांप्रदायिक घटनाएँ दंगों में परिवर्तित होने की क्षमता रखती हैं, परंतु राज्य सरकार के आदेशों पर स्थानीय पुलिस ऐसा होने से इन्हें रोकती है।

अतः राज्य सरकार की प्रतिक्रिया निर्धारित करती है कि एक बार हिंसा होने के बाद वह जारी रहती है या नहीं। विल्किंसन के अनुसार दंगों को बढ़ने से रोकने में राज्य सरकार की अहम भूमिका होती है। वह कहते हैं, 'फ़ोर्स महत्त्वपूर्ण है क्योंकि दंगों के अध्ययन में यह पाया गया है कि भले ही हिंसा को बढ़ावा देने वाले शहर-स्तरीय कारक जो भी हों, दंगाई आम तौर पर सशस्त्र पुलिस या सैनिकों का सामना करने से बचते हैं। ये बल दंगाइयों को रोकने के लिए घातक बल का उपयोग करने के लिए तैयार रहते हैं। राज्य सरकार की भूमिका महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि भारत की राज्य सरकारें, न कि देश की राष्ट्रीय, नगरपालिका या ज़िला सरकारें, स्थानीय पुलिस और अर्धसैनिक बलों का नियंत्रण करती हैं और साथ ही यह भी तय करती हैं कि स्थानीय-स्तर पर दंगों को रोकने के लिए कितनी ताक़त या बल की आवश्यकता होगी।'[37]

विल्किंसन दंगों को समझने के लिए राज्य और शहर के स्तर पर मौजूद चुनावी प्रयोजन तर्क पर ध्यान केंद्रित करते हैं। परंतु वे नगरपालिका-स्तर की राजनीति और सांप्रदायिक हिंसा के बीच के संबंध को देखने से चूक जाते हैं। 2002 के दंगों पर आधारित साहित्य अहमदाबाद शहर में घटित हिंसा में विभिन्नता तथा नगरपालिका-स्तर की राजनीति की प्रमुख भूमिका को समझने में विफल रहा है। 2002 के दंगे अहमदाबाद शहर में समान रूप से नहीं फैले थे। अहमदाबाद में दंगा-प्रभावित इलाक़ों की पहचान दो मुख्य तथ्यों पर प्रकाश डालती है : पहला, हिंसा मुख्य रूप से उन इलाक़ों में हुई थी जो नगरपालिका में कॉन्ग्रेस पार्टी के गढ़ थे; और दूसरा, हिंसा उन प्रतिस्पर्धी सीटों या नगरपालिका वार्डों में हुई थी जहाँ भाजपा को चुनाव में हार का अनुमान था। दंगे गोमतीपुर, बेहरामपुरा, अमरेवड़ी, सरसपुर, रखिआल, असरवा और वटवा के नगरपालिका वार्डों में भड़काए गए थे, जो कॉन्ग्रेस-प्रभुत्व वाले वॉर्ड होने के साथ-साथ निचली जाति और मुसलमान आबादी वाले मिश्रित इलाक़े भी हैं।[38] इन सभी इलाक़ों में निचली जातियों ने 2000 के अहमदाबाद नगरपालिका चुनाव में कॉन्ग्रेस पार्टी को अपना वोट दिया था। भाजपा कॉन्ग्रेस के लिए निचली जाति के वोटों के स्थानांतरण और 2005 के नगरपालिका चुनाव जीतने के अवसर को लेकर चिंतित थी। पार्टी यह चुनाव हारने का जोख़िम नहीं उठा सकती थी क्योंकि 1987 से नगरपालिका-स्तर पर अपना वर्चस्व क़ायम रखने के बाद यह पार्टी की लगातार दूसरी बड़ी हार होती। निचली जाति के वोटों का कॉन्ग्रेस में स्थानांतरण होने से भाजपा को यह संकेत मिला कि पार्टी के सांप्रदायिकीकरण के प्रयास कमज़ोर हो गए थे और हिंदुत्व को एक चुनावी तख़्ती के रूप में नए सिरे से खड़ा करने की आवश्यकता थी। गोधरा में हुई घटना को पार्टी द्वारा भुनाया गया ताकि निचली जातियों के वोट जीते जा सकें। भाजपा की नज़रें न केवल 2002 के तात्कालिक विधानसभा चुनावों

[37] वही : 19-20.

[38] भारत की जनगणना नगरपालिका वॉर्ड के स्तर पर केवल अनुसूचित जाति की आबादी के आँकड़े दर्ज करती है, धार्मिक समूहों के नहीं. फ़ील्डवर्क के दौरान उत्तरदाताओं के साथ हुई बातचीत और साहित्य के आधार पर मेरा अनुमान है कि इन इलाक़ों में मुसलमानों की ख़ासी बड़ी आबादी रहती है.

पर टिकी थी, बल्कि उसकी 2005 में निर्धारित नगरपालिका चुनावों पर भी नज़र थी।

मेरे दो मुख्य फ़ील्डवर्क क्षेत्र — गोमतीपुर का नगरपालिका वॉर्ड और राम-रहीम नगर का पड़ोस इस हिंसा को देखने का केंद्र रहे हैं। एक ओर गोमतीपुर दंगा-ग्रस्त है, तो दूसरी ओर राम-रहीम नगर शांतिपूर्ण है। मैंने फ़ील्डवर्क के द्वारा गोमतीपुर में दंगे उत्पन्न करने वाले स्थानीय कारणों और राम-रहीम नगर में हिंसा को होने से रोकने वाले कारणों का पता लगाया है। इन दोनों क्षेत्रों में भाजपा-संघ के स्थानीय कार्यकर्ता सांप्रदायिक तनाव बनाए रखते हैं; गोमतीपुर में यह तनाव सांप्रदायिक घटनाओं में परिवर्तित हो जाते हैं लेकिन इन्हें एक महत्त्वपूर्ण अनुपात में बढ़ने से रोका जाता है, जबकि राम-रहीम नगर में एक शांति समिति की उपस्थिति और निवासियों द्वारा साझा झोपड़वासियों के रूप में सामूहिक पहचान यहाँ सांप्रदायिक घटनाओं को उत्पन्न होने से रोकती है। इन दोनों क्षेत्रों में 2012 और 2014 के बीच विभिन्न उत्तरदाताओं के साथ असंरचित गुणात्मक साक्षात्कार संचालित किए गए थे : दंगा-प्रभावितों के परिवार (उत्तरदाताओं में सबसे महत्त्वपूर्ण); दंगों में भाग लेने वाले; कॉन्ग्रेस के पार्षद और पार्टी के कार्यकर्ता; भाजपा-संघ के स्थानीय कार्यकर्ता; स्थानीय ग़ैर सरकारी संगठनों के सामाजिक कार्यकर्ता; स्थानीय पत्रकार; पुलिस; निचली जाति और पिछड़े समुदाय के निवासी; मुसलमान निवासी (अधिकांश सुन्नी संप्रदाय से); और राम-रहीम नगर समिति के सदस्य। गोमतीपुर में 50-60 और राम-रहीम नगर में 20-30 साक्षात्कार संचालित किए गए।

गोमतीपुर : अहमदाबाद नगर निगम के पूर्वी क्षेत्र और पूर्वी अहमदाबाद में बसा गोमतीपुर का नगरपालिका वॉर्ड एक कम आय वाली बस्ती है जो निचली जातियों और मुसलमानों द्वारा आबाद है। यहाँ बसने वाले अधिकांश निवासी महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार और कर्नाटक राज्यों से आए प्रवासी मज़दूर हैं जो शहर के कपड़ा मिलों में काम करने आए थे। गोमतीपुर की प्रमुख बस्तियाँ चालीस और वास या वाडास (बस्तियों का समूह) का रूप लेती हैं और आमतौर पर बस्ती का नाम यहाँ के निवासियों की जाति या समुदाय के आधार पर रखा जाता है।[39] मुसलमान मुहल्ले ज़्यादातर निचली जाति और उच्च जाति की हिंदू बस्तियों से घिरे हैं। गोमतीपुर की तीन प्रमुख अनुसूचित जातियाँ — वाल्मीकि (भंगी), वनकर, और चमार हैं। यहाँ अन्य पिछड़े समुदाय के निवासी जैसे नाई, कंसारा (बर्तन और बेल्ट बनाने वाले), रबारी (चरवाहा) और वाघरी भी रहते हैं।[40] मुसलमान समुदाय के सुन्नी मुसलमान यहाँ भारी संख्या में रहते हैं।

2002 के गोमतीपुर दंगों की तहक़ीक़ात करने वाली स्वतंत्र जाँच-पड़ताल और खोजी

---

[39] उदाहरण के लिए, वनकर *वास* (बुनकरों की बस्ती), वाघरी *वाडा* (मछली बेचने वालों की बस्ती) और कामदार *वास* (सफ़ाई कर्मचारियों की बस्ती) निचली जाति की कुछ बस्तियों के नाम हैं. मोहनलाल *नी चाली* (मोहनलाल की बस्ती), लालभाई *नी चाली* (लालभाई की बस्ती) और छोटेलाल *नी चाली* (छोटेलाल की बस्ती) कुछ ऐसे *चालीस* हैं जो उनके संबंधित मालिकों के नाम पर रखे गए हैं. अहमदी सोसाइटी, शमशेर बाग़ और पाकवाड़ा आदि मुसलमान बस्तियों के नाम हैं.

[40] वाघरी मूल रूप से शिकारी और बहेलिया थे. लेकिन वर्तमान समय में वाघरी समुदाय के लोग अपने जीवनयापन के लिए घर-घर जाकर पुराने और इस्तेमाल किये गए कपड़े माँगकर बदले में नये बर्तन देते हैं. अहमदाबाद में यह समुदाय स्वयं को देवीपूजक (देवी शक्ति के उपासक) कहते हैं. हाल ही में इस समुदाय को अन्य पिछड़े समुदाय में शामिल किया गया है.

पत्रकारिता के आधार पर यह पता चलता है कि नगर निगम पार्षदों, विधायकों, पुलिस, हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों से जुड़े कार्यकर्ता और स्थानीय गुण्डों के घनिष्ठ नेटवर्क ने हिंसा की योजना और उसे भड़काने का काम किया। गोमतीपुर में 2002 से जुड़ी हिंसा कई महीनों तक जारी रही, जबकि शहर के बाक़ी हिस्सों में हिंसा थम गई थी। भाजपा के प्रमुख विधायक जीतूभाई वाघेला का नाम गोमतीपुर दंगों में शामिल था और पुलिस ने उनके आदेशों के तहत काम किया था।[41]

2002 के दंगों के अधिकांश वर्णन के अनुसार निचली जातियाँ मुसलमानों के ख़िलाफ़ हिंसा में शामिल थी। अहमदाबाद के 2002 के दंगों के अपने अध्ययन में वॉर्ड बेरेंस्कॉट बताते हैं कि भाजपा और हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों के इर्द-गिर्द बने संरक्षण चैनलों पर निचली जातियों की निर्भरता दंगों में उनकी भागीदारी का कारण थी।[42] परंतु उन इलाक़ों में हिंसा के कारणों को कैसे समझा जाए जहाँ संरक्षण का चैनल कॉन्ग्रेस पार्टी द्वारा संचालित है? कॉन्ग्रेस को अपने नगरपालिका वार्डों के लिए संसाधन जुटाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है (क्योंकि भाजपा राज्य और शहर के स्तर पर लंबे समय से सत्ता में बनी हुई है), लेकिन इसके बावजूद नगरपालिका में मिश्रित वॉर्ड कॉन्ग्रेस का गढ़ है।

> दंगों को रोकने की संभावना केवल अल्पसंख्यक वोटों या राज्य में पार्टी प्रतिस्पर्धा के स्तर पर निर्भर नहीं है, जैसा कि विल्किंसन दावा करते हैं, बल्कि यह नेताओं द्वारा पोषित राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं से भी जुड़ा है जो दंगों को अपने राजनीतिक कैरियर और भविष्य के राजनीतिक लक्ष्यों पर एक हानिकारक प्रभाव के रूप में देख सकते हैं।

फ़ील्ड-अवलोकन के आधार पर मेरा ऐसा मानना है कि गोमतीपुर 2002 के दंगों में सबसे अधिक प्रभावित इसलिए था क्योंकि भाजपा द्वारा निचली जातियों की लामबंदी और हिंदू समुदाय के भीतर उन्हें लाने की कोशिशों के बावजूद 2000 के अहमदाबाद नगर निगम चुनाव परिणामों ने भाजपा के असफल सांप्रदायिकीकरण के प्रयासों को उजागर कर दिया गया था। निचली जातियों ने न केवल कॉन्ग्रेस पार्टी को अपने वोट दिये, बल्कि गोमतीपुर जैसे वॉर्ड में एक निर्दलीय मुसलमान उम्मीदवार को अपने प्रतिनिधि के रूप में चुना। इसके अतिरिक्त, 2000 के नगरपालिका चुनाव को जीतने के बाद कॉन्ग्रेस पार्टी द्वारा निचली जातियों और मुसलमानों को साथ लाने का प्रयास किया गया जिससे एक विजयी चुनावी गठबंधन का निर्माण किया जा सके। गोमतीपुर में घटी सांप्रदायिक हिंसा को गोमतीपुर के भाजपा पार्षद जीतूभाई वाघेला द्वारा राजनीतिक प्रतिशोध के रूप में देखा जाना चाहिए जो राजनीतिक तौर पर एक अनुभवहीन उम्मीदवार के हाथों अपनी हार को पचा नहीं सके, क्योंकि वह उम्मीदवार एक मुसलमान था।[43]

मैंने फ़ील्डवर्क के दौरान यह जाना कि निचली जाति के समुदाय के भीतर कुछ समुदाय ऐसे

---

[41] देखें, कंसर्न्ड सिटिज़न्स ट्रिब्यूनल (2002) : 57 ; डीओने बुंशा (2002).

[42] वॉर्ड बेरेंस्कॉट (2013).

[43] 2002 की हिंसा में सहापराधिता के बावजूद गोमतीपुर के भूतपूर्व पार्षद जीतूभाई वाघेला को 2002 के विधानसभा चुनाव के लिए अहमदाबाद के शहरकोटड़ा के आरक्षित विधानसभा क्षेत्र से भाजपा उम्मीदवार के रूप में चुना गया और वह 2,404 मतों के अंतर से विधायक बने. देखें, सौरव मुखर्जी (2002).

थे जो भाजपा के संरक्षण चैनलों पर निर्भर, उनसे लाभान्वित और दंगों में भी शामिल थे। भाजपा ने गोमतीपुर में सभी निचली जाति के समूहों के बीच अपने संरक्षण चैनल स्थापित नहीं किए थे। इसलिए ज़रूरी यह था कि उन समूहों की पहचान की जाए जो भाजपा के स्थानीय नेताओं और कार्यकर्ताओं के साथ दंगों के आयोजन और हिंसा में शामिल थे और साथ ही पार्टी के संरक्षण चैनलों पर आश्रित और उससे लाभान्वित थे। दंगाई पिछड़े समुदाय से थे और अन्य निचली जातियों से इनके संबंध प्रतिकूल थे। दंगों में मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश से आए चमार और अन्य पिछड़े समुदाय के नाई, रबारी, कंसारा और वाघरी शामिल थे। फ़ील्डवर्क के निष्कर्षों से यह पता चलता है कि गोमतीपुर में दंगे का आयोजन करने वाले लोग धनी और छोटे व्यवसायों से जुड़े थे। वे अपने व्यावसायिक हितों को बढ़ाने और अपने राजनीतिक कैरियर को आकार देने के लिए भाजपा पर निर्भर थे।

भले ही 2002 के बाद गुजरात में कोई बड़ा दंगा नहीं हुआ है, परंतु अहमदाबाद के गोमतीपुर जैसे अंतर-मिश्रित इलाक़ों में सांप्रदायिक तनाव और घटनाएँ दैनिक दिनचर्या का हिस्सा बन गई हैं। 2000 में एक निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में इस सीट को जीतने वाले मुसलमान पार्षद ने बाद में कॉन्ग्रेस की टिकट पर 2005 से 2015 तक लगातार यहाँ अपनी जीत दर्ज करके गोमतीपुर को कॉन्ग्रेस के गढ़ में परिवर्तित कर दिया। मुसलमान पार्षद को गोमतीपुर के निवासियों द्वारा रॉबिनहुड के रूप में देखा जाता है। वे निचली जाति और मुसलमान समुदाय के बीच काफ़ी लोकप्रिय हैं। वे निवासियों की ज़रूरतों और उनकी चिंताओं के प्रति सजग हैं और उनकी दिन-प्रतिदिन की समस्याओं को सुलझाने में उनकी सहायता करते हैं। वे दोनों समुदायों में होने वाले झगड़ों का विवेकपूर्ण और समाधान निकालते हैं ताकि उन्हें एक मुसलमान समर्थक के रूप में न देखा जाए। उनकी मण्डली और चाटुकारों में दोनों समुदायों के सदस्य शामिल हैं। चूँकि अधिकांश निचली जातियाँ इस मुसलमान पार्षद पर विश्वास और निर्भर करती हैं, इसी कारणवश भाजपा ने गोमतीपुर में विशेष रूप से अपने संरक्षण संबंधों को अन्य पिछड़े समुदाय के साथ पोषित कर उन पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। इस समुदाय के लोग हिंदुत्व की विचारधारा के प्रति ग्रहणशील हैं और कई तो आरएसएस के सक्रिय स्वयंसेवक भी बन गए हैं। इनमें से वाघरी समुदाय भाजपा और हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों के सबसे मुखर समर्थक हैं। वाघरी समुदाय के लोगों ने साक्षात्कार के दौरान बताया कि वे भाजपा के प्रति सदैव वफ़ादार रहेंगे और भविष्य में भी केवल भाजपा को ही अपना वोट देंगे। एक वाघरी पुरुष के शब्दों में, 'भले ही दो सौ रुपये किलो की क़ीमत का तेल खाएँगे पर भाजपा को ही लाएँगे।'[44] भाजपा ने वाघरी समाज को कई लाभ पहुँचाए हैं। मसलन, उन्हें सरकारी नौकरियाँ दी हैं; उन्हें निचली जातियों के मंदिरों में पुजारियों के रूप में नियुक्त किया है; उन्हें नगरपालिका के विद्यालयों में शिक्षक पदों पर नियुक्त किया है; और साथ ही उन्हें पार्टी के भीतर संगठनात्मक पदों पर भी नियुक्त किया है।

फ़ील्डवर्क के अनुसार गोमतीपुर इसलिए दंगाग्रस्त है क्योंकि यह क्षेत्र हिंदुत्व परियोजना के

---

[44] साक्षात्कार, 8 जून, 2014, गोमतीपुर.

लिए एक विफल परीक्षण-केंद्र रहा है। भाजपा और हिंदू राष्ट्रवादी संगठन न तो यहाँ निचली जातियों के वोटों को प्राप्त कर पाए हैं और न ही उनका पूर्ण रूप से सांप्रदायिकीकरण करने में सफल हुए हैं। इसका प्रमाण इस सीट से कॉन्ग्रेस का लगातार जीतना और मुसलमान पार्षद की सत्ता में बार-बार वापसी है। इन्हीं कारणों के चलते गोमतीपुर में सांप्रदायिक हिंसा भड़काई जाती है और समुदायों के बीच संबंधों का ध्रुवीकरण करने का प्रयास किया जाता है जिससे मुसलमान पार्षद की छवि और उनकी लोकप्रियता को नुक़सान पहुँचाया जा सके; निचली जाति और मुसलमानों के संबंधों को तोड़ा जा सके। सबसे महत्त्वपूर्ण है हिंदुत्व के सांस्कृतिक लक्ष्यों को आगे बढ़ाना।

हालाँकि समय के साथ गोमतीपुर में भाजपा और हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों की पकड़ कमज़ोर हुई है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि सांप्रदायिकीकरण के प्रयासों पर अंकुश लग गया है। धर्म अब भी सबसे प्रमुख पहचान है जिसका चुनावों के दौरान मतदाताओं के बीच आह्वान किया जाता है। परिणामस्वरूप ध्रुवीकरण उत्पन्न करने वाली गतिविधियों को भी तेज़ी मिलती है। फ़ील्डवर्क के दौरान जब गोमतीपुर 2015 के नगरपालिका चुनाव के लिए अपनी कमर कस रहा था, मैंने देखा कि एक स्थानीय भाजपा नेता चुनाव अभियान के दौरान सांप्रदायिक प्रचार का सहारा ले रहे थे। निचली जातियों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने पूछा, 'क्या आप एक मुसलमान पार्षद के साथ सुरक्षित महसूस करते हैं? क्या आपको लगता है कि यहाँ महिलाएँ और बच्चे सुरक्षित हैं? यदि आपका जवाब नहीं है, तो अपना क़ीमती वोट भाजपा को ही दें।'[45] गोमतीपुर में सांप्रदायिक तनाव को तुच्छ मामलों पर उकसाया जाता है, मसलन, दो व्यक्तियों के बीच एक साधारण मतभेद दोनों समुदाय के लोगों को एकत्रित करके उसे एक सांप्रदायिक झड़प की ओर ले जाता है।

सांप्रदायिक तनाव और घटनाओं का सामान्यीकरण सामान्य रोज़मर्रा की ज़िंदगी में वापसी को कठिन बना देता है। प्रत्येक झड़प पुराने रिश्तों पर लौटने की राह को दुर्गम बना देती है। 2002 के दंगों के प्रभाव पर दीपंकर गुप्ता लिखते हैं, 'तनावपूर्ण परिस्थितियों के आंतरिक कारण को समझना आवश्यक है जिसके तहत समुदाय एक दूसरे के साथ एक 'न्यू नॉर्मल' के तहत रहना सीखते हैं।'[46] यह 'न्यू नॉर्मल' समूहों के बीच दूरियों, मतभेदों और तनावों के प्रति सचेत है और साथ ही समझौते, असुरक्षा और विसंगतियों से भी भरा है। ऐसे में महत्त्वपूर्ण है कि, 'केवल संदर्भ को दर्शाने के बजाय उसे महसूस भी किया जाए, उस तबाही को महसूस किया जाए जो रोज़मर्रा की ज़िंदगी में लौटने का ढोंग करती है।'[47] फ़ील्डवर्क के पहले चरण में मुझे ऐसा लगा कि 2002 के दंगों के बाद गोमतीपुर के निवासियों का जीवन सामान्य हो गया है। मैंने देखा कि हिंदू-मुसलमान सार्वजनिक स्थानों पर मिलते और बातचीत करते हैं। परंतु उत्तरदाताओं के साथ घनिष्ठ साक्षात्कार के बाद यह स्पष्ट हो गया कि इस 'न्यू नॉर्मल' का इस हद तक आत्मसातीकरण हो चुका है कि निवासी अब छोटी सांप्रदायिक घटनाओं और झड़पों के प्रति सुन्न हो गए हैं। उन्हें लगने लगा है कि ये संघर्ष उनके जीवन का एक हिस्सा बन चुके हैं। मेरे अधिकांश उत्तरदाताओं ने दोहराया कि 'छिटपुट फ़साद होते

[45] फ़ील्डवर्क, 8 जुलाई, 2014, गोमतीपुर.

[46] दीपंकर गुप्ता (2011) : 4-5.

[47] येल-नवरो यशिन (2003) : 109.

रहते हैं पर 2002 जैसा धमाल (दंगा) नहीं हुआ है।' साथ ही, गोमतीपुर में विभिन्न बॉर्डरों और ऊँची दीवारों की उपस्थिति दोनों समुदायों के बीच भय और संदेह का माहौल बनाए रखती है।[48] 2002 के दंगों के बाद दोनों समुदाय के निवासियों ने अपने-अपने पड़ोस के बीच कंक्रीट की दीवारों का निर्माण किया है। छोटे दरवाज़े इन दीवारों में खुदे हुए हैं जो आमतौर पर खुले रहते हैं, किंतु सांप्रदायिक घटनाओं के दौरान निवासियों द्वारा बंद कर दिए जाते हैं।

राम-रहीम नगर : राम-रहीम नगर का पड़ोस एक झुग्गी बस्ती है जो साबरमती नदी के पूर्वी किनारे पर बसा है और अहमदाबाद नगर निगम के बेहरामपुरा वॉर्ड में आता है। राम-रहीम नगर को यहाँ के निवासी राम-रहीम टेकरा भी बुलाते हैं।[49] मुसलमानों द्वारा पहले इसे ग़ुलाबभाई नो टेकरा और हिंदुओं द्वारा महाराज नो टेकरा बुलाया जाता था। यहाँ के मूल निवासी बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और महाराष्ट्र से आए प्रवासी मज़दूर थे, जो मिलों में काम करने अहमदाबाद आए थे और फिर यहीं बस गए। राम-रहीम नगर की आबादी लगभग 22,000 है, जिसमें 70 प्रतिशत मुसलमान और 30 प्रतिशत अनुसूचित जाति के हिंदू हैं। यहाँ अधिकांश मुसलमान सुन्नी संप्रदाय से हैं और निचली जातियों में चमार यहाँ पर सबसे बड़ा समूह है। यहाँ मुट्ठी भर ईसाई भी रहते हैं जो केरल, कर्नाटक और ओड़ीशा राज्यों से आए थे। मिलों के बंद होने के बाद यहाँ के पूर्व मिल मज़दूर और उनके परिवार अपने जीवनयापन के लिए अनौपचारिक क्षेत्रों में काम करते है। सब्ज़ी बेच कर,पतंग बना कर, ऑटो रिक्शा चला कर, मांस बेच कर, अगरबत्ती और काग़ज़ की थैलियाँ बनाकर वे अपनी जीविका कमाते हैं। कुल मिला कर, राम-रहीम नगर एक ग़रीब बस्ती है जिसमें बुनियादी नागरिक सेवाओं एवं सुविधाओं, जैसे, पक्की सड़कें, पर्याप्त पानी का प्रावधान, जल निकासी की सुविधा, सरकारी स्कूल, अस्पताल और सार्वजनिक शौचालय का अभाव है।

बस्ती की मुख्य सड़क पर स्थित एक छोटी और भद्दी नीले रंग की इमारत यहाँ की शांति समिति, मंडल, के कार्यालय के रूप में काम करती है। इस इमारत की मुहर पर गुजराती भाषा में 'राम और रहीम नगर झोपड़वासी मंडल' लिखा है। राम शब्द लाल रंग से और रहीम हरे रंग से लिखा गया है; दोनों रंगों का चयन मंडल के सेकुलर मूल्यों और सांप्रदायिक सौहार्द के उद्देश्य का प्रतीक है। साथ ही मुहर पर हिंदुओं, मुसलमानों और ईसाइयों के पवित्र चिह्न — ओम, चाँद-तारा तथा क्रॉस चित्रित हैं। पड़ोस से संबंधित विषयों की जानकारी और सांप्रदायिक शांति और सद्भाव

---

[48] बॉर्डर को प्रतीकात्मक रूप से एक ऐसे क्षेत्र के लिए संदर्भित किया गया है जो मुसलमान और हिंदू इलाक़े को एक-दूसरे से अलग करता है. गोमतीपुर जैसे दंगाग्रस्त वॉर्ड में मौजूद कुछ सड़कों और चौराहों को निवासियों द्वारा बॉर्डर के रूप में संबोधित किया जाता है. अस्थायी पुलिस स्टेशन ज़्यादातर बॉर्डर के आसपास मौजूद होते हैं.

[49] 'टेकरा' शब्द को गुजराती भाषा में ऊँची समतल भूमि कहा जाता है. मिल दिनों के दौरान पास के कैलिको मिल के मज़दूरों ने नदी के किनारे अवैध रूप से क़ब्ज़ा करके यहाँ पर रहना शुरू कर दिया था. उनके घर मिट्टी और पुआल के बने थे. नदी के किनारे रहने के कारण उन्हें मानसून में बाढ़ का सामना करना पड़ता था और साबरमती नदी का पानी उनके घरों में घुस जाता था. लगातार आने वाली बाढ़ से बचने के लिए निवासियों ने कीचड़ को इकट्ठा करके ज़मीन की ऊँचाई को बढ़ाना शुरू कर दिया. इस ऊँची भूमि को निवासी टेकरा बुलाते हैं. टेकरा शब्द का यह अर्थ उत्तरदाताओं के साथ साक्षात्कार के दौरान सामने आया.

यह तस्वीर 10 अप्रैल, 2014 को ली गई थी। इस तस्वीर में दिख रही सड़क को निवासी बॉर्डर बुलाते हैं जो गोमतीपुर वॉर्ड (बाईं ओर) को राजपुर वॉर्ड (दाईं ओर) से अलग करती है। 2002 की हिंसा से जुड़ी घटनाओं की यह सड़क गवाह है।
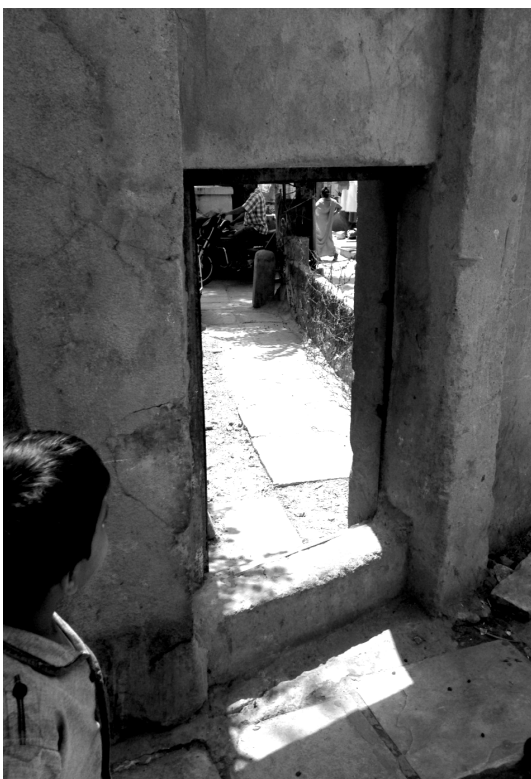
निवासियों द्वारा निर्मित कंक्रीट की दीवार की यह तस्वीर 3 अप्रैल, 2014 को फ़ील्डवर्क के दौरान ली गई थी।

का संदेश प्रदर्शित करने के लिए कार्यालय की दीवार पर दो काले रंग के सूचना पट लगाए गए हैं। मंडल समिति को 2002 की हिंसा को रोकने के अपने प्रयासों के लिए मिले हुए अनेक पुरस्कारों और मान्यताओं से कार्यालय-कक्ष सुसज्जित हैं।

मंडल समिति का गठन 1973 में हुआ था। दो अलग-अलग विवरण मंडल की उत्पत्ति की व्याख्या करते हैं। पहले विवरण के अनुसार 1969 का दंगा मंडल की स्थापना में एक महत्त्वपूर्ण निर्देश-चिह्न था। राम-रहीम नगर के आस-पास हुई तबाही को देख कर यहाँ के निवासी चिंतित हो उठे कि कहीं भविष्य में उनकी बस्ती भी दंगों की चपेट में न आ जाए। साथ ही निवासियों का यह मानना था कि उनकी दयनीय परिस्थितियों के चलते उनका एक-दूसरे के साथ प्रतिकूल व्यवहार अनुचित होगा। परिणामस्वरूप, निवासियों ने एक साथ मिल कर मंडल की स्थापना की।[50] दूसरा विवरण स्लम लॉर्ड और उसके गिरोह के विरुद्ध बस्तीवासियों के सामूहिक संघर्ष और एकता को बयाँ करता है जिसके फलस्वरूप मंडल का उद्गम हुआ।[51]

---

[50] मंडल सदस्य के साथ साक्षात्कार, 15 जुलाई, 2014, राम-रहीम नगर.

[51] राम-रहीम नगर के बुज़ुर्ग उत्तरदाताओं के साथ साक्षात्कार, 20 जुलाई, 2014.

1973 से मंडल समिति में बस्ती के हिंदू-मुसलमान समुदाय से 21 सदस्य शामिल हैं जो अंतरजातीय शांति और सद्भाव में विश्वास रखते हैं। समिति के सदस्य 60 से 80 वर्ष के बुज़ुर्ग पुरुष हैं जो स्वयं को सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में देखते हैं। अशिक्षित होने के बावजूद मंडल समिति के सदस्यों को आधिकारिक प्रक्रियाओं पर अच्छी पकड़ है जिसके फलस्वरूप वे पुलिस और प्रशासन से निपट लेते हैं और बस्तीवासियों के बीच झगड़ों और दिन-प्रतिदिन की समस्याओं को भी सुलझा लेते हैं। परंतु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मंडल के सदस्यों द्वारा बस्ती में प्रयोग किए जाने वाले अधिकार मंडल की प्रतिबद्धता और दंगों को रोकने के संकल्प से अर्जित हैं। यही कारण है कि बस्तीवासी उन्हें 'बड़े लोग' कहकर संबोधित करते हैं।

राम-रहीम नगर अहमदाबाद में हुए सभी दंगों (1969, 1985, 1990, 1992 और 2002) में शांति बनाए रखने में सफल रहा है। दंगों को रोकने के लिए मंडल की कार्यप्रणाली सरल है। मंडल समिति के एक सदस्य के अनुसार, 'दंगों का आभास होने पर हम तुरंत ही बस्तीवासियों को शांति बनाए रखने और अफ़वाहों से दूर रहने को कहते हैं और साथ ही बस्ती में चक्कर लगाना शुरू कर देते हैं। बाहर के लोगों का बस्ती में प्रवेश रोकने के लिए हम दोनों समुदायों के युवा लड़कों के साथ पूरी रात जागकर बस्ती के तीन प्रवेश द्वारों पर निगरानी रखते हैं। हम आस-पड़ोस के असामाजिक तत्त्वों पर भी नज़र रखते हैं।'[52]

प्रत्यक्ष रूप से मंडल की स्थानीय प्रमुखता बस्ती में हिंसा को रोकने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण कारक प्रतीत होती है। ग़ौरतलब है कि शांति को संस्थागत बनाने में मंडल के प्रयास इसलिए सफल हुए क्योंकि दोनों समुदाय स्वयं को केवल हिंदू-मुसलमान के आईने से न देख कर, झोपड़वासी के रूप में भी देखते हैं। झोपड़वासियों के रूप में उनकी सामूहिक पहचान सांप्रदायिक पहचान को हावी नहीं होने देती। साबरमती रिवरफ्रंट डिवेलपमेंट प्रोजेक्ट (एसआरडीपी) के कार्यान्वयन से निष्कासन के डर ने इस सामूहिक पहचान को आकार देने का कार्य किया है।[53] यह आंशिक रूप से स्पष्ट करता है कि राम-रहीम नगर हिंसा मुक्त क्यों रहा।

राम-रहीम नगर का उदाहरण आशुतोष वार्ष्णेय के तर्क की पुष्टि करता है कि अंतरजातीय सहयोगी जुड़ाव शांति को बढ़ावा देते हैं, 'जहाँ ऐसे संघ या जुड़ाव के नेटवर्क मौजूद हैं, तनावों और संघर्षों को विनियमित और प्रबंधित किया गया है; जहाँ वे ग़ायब थे, सांप्रदायिक पहचान के कारण स्थानिक और भयावह हिंसा हुई।'[54] शांति समितियों के संदर्भ में वार्ष्णेय का तर्क विशेष ध्यान आकर्षित करता है। वार्ष्णेय के अनुसार, शांति समितियाँ 'अल्पकालिक' और 'अस्थायी' होती हैं; और उन लोगों द्वारा बनाई जाती हैं (जो अंतरजातीय रूप से एक दूसरे के साथ जुड़े होते हैं) जो सांप्रदायिक तनाव के समय

[52] मंडल सदस्यों के साथ साक्षात्कार, 23 जुलाई, 2014 राम-रहीम नगर.

[53] एसआरडीपी एक शहरी कायाकल्प परियोजना है जिसकी शुरुआत 1997 में हुई थी, जब अहमदाबाद नगर निगम ने शहर के रिवरफ्रंट डिवेलपमेंट कॉरपोरेशन लिमिटेड की स्थापना की थी. परियोजना में नदी के किनारे सैरगाह, हरे-भरे खुले स्थान, आवासीय और वाणिज्यिक विकास और सांस्कृतिक सुविधाओं के विकास के लिए नदी के नौ किलोमीटर के हिस्से के साथ व्यापक भूमि सुधार की परिकल्पना की गई थी. इसके लिए 2006 से 2011 के बीच नदी के किनारे की कई बस्तियों को ध्वस्त कर दिया गया था.

[54] आशुतोष वार्ष्णेय (2002) : 9.

राम और रहीम नगर झोंपड़ावासी मंडल के कार्यालय की तस्वीर, 2 जुलाई, 2014.

एक साथ आ जाते हैं।[55] ऐसे पड़ोस के संगठन 'पड़ोस की रखवाली करते हैं, अफ़वाहों को मारते हैं, स्थानीय प्रशासन को जानकारी देते हैं और तनाव के समय दोनों समुदायों के बीच सम्पर्क स्थापित करते हैं।'[56] साथ ही वार्ष्णेय मानते हैं कि ये समितियाँ एवं संगठन तभी प्रभावी होते हैं जब ये स्थानीय प्रशासन के द्वारा ऊपर से थोपे जाने के बजाय नागरिकों की पहल से बनते हैं; इन समितियों का 'उन शहरों में बनना कठिन होता है जहाँ रोज़मर्रा की बातचीत धार्मिक रेखाओं को नहीं लाँघती ... निरंतर बातचीत और सौहार्द इन संकट प्रबंधन संगठनों को उभरने में मदद करती है।'[57] राम-रहीम नगर का उदाहरण यह दर्शाता है कि शांति समितियाँ एक दीर्घकालिक चरित्र की भी हो सकती हैं और साथ ही लम्बे समय तक भी जीवित रह सकती हैं, केवल तब, जब वे अंतरजातीय शांति को संस्थागत करने के लिए प्रतिबद्ध हों और केवल धर्म से नहीं, बल्कि अन्य पहचान से भी पुख़्ता की गई हों।

यह सत्य है कि मंडल को 2002 के दंगों के दौरान राम-रहीम नगर में शांति बनाए रखने के लिए ख़ूब प्रशंसा और सराहना मिली, परंतु यह भी एक कटु सत्य है कि भाजपा-संघ द्वारा बस्ती में शांति भंग करने का प्रयास किया गया था। हिंसा से जुड़ी या अन्य घटनाएँ बस्ती की मुख्य सड़क पर हुई थी, जिसमें बस्ती के निचली जाति के कुछ निवासी शामिल थे। वे संघ कार्यकर्ताओं के सम्पर्क में आए थे और उनसे प्रभावित थे।[58] परंतु इस तथ्य को मंडल ने उजागर नहीं होने दिया क्योंकि यह मंडल की छवि, सम्मान और प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाता। बस्ती के चमार समुदाय के भीतर

---

[55] वही.

[56] वही : 10.

[57] वही.

[58] फ़ील्डवर्क से उत्पन्न इस खोज की पुष्टि दो और सूत्रों द्वारा की गई है. देखें, असग़र अली इंजीनियर (2003) : 344; इप्सिता चटर्जी (2009) : 1008.

सांप्रदायिकता का पनपना और परिणामस्वरूप हिंसा में उनकी सहभागिता को बस्ती में हो रहे परिवर्तनों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

अपनी स्थानीय प्रमुखता के साथ-साथ, मंडल अपने शांति प्रयासों में इसलिए भी सफल रहा क्योंकि उसके सदस्य कॉन्ग्रेस पार्टी द्वारा संचालित संरक्षण चैनलों से जुड़े थे, जिसके कारण मंडल हिंदू राष्ट्रवादी संगठनों को बस्ती से दूर रखने में कामयाब रहा।[59] मंडल बस्तीवासियों की समस्याओं का समाधान करने में इसलिए सक्षम था क्योंकि वह बस्तीवासियों और कॉन्ग्रेस नेताओं के बीच मध्यस्थों के रूप में काम करता था। बदले में कॉन्ग्रेस नेता यह उम्मीद करते थे कि बस्ती में मंडल की प्रधानता पार्टी के विजयी उम्मीदवार के पक्ष में भारी संख्या में वोट जुटाने में सहायक होगी।

परंतु समय के साथ मंडल की मध्यस्थता की क्षमता कमज़ोर पड़ने लगी और वह बस्ती के लिए संसाधन उपलब्ध कराने में असफल होने लगी। इसके दो कारण थे : पहला, मंडल के सदस्य अन्य सामाजिक कार्यकर्ताओं से अलग हैं और वे स्वयं के हितों को आगे बढ़ाने के लिए नेताओं की अनुचित माँगों के आगे नहीं झुकते और साथ ही उन आदर्शों और सिद्धांतों से समझौता नहीं करते जिस पर बस्ती और समिति दोनों की नींव रखी गई थी; और दूसरा, कॉन्ग्रेस के नेता मंडल के आग्रहों के प्रति आकस्मिक दृष्टिकोण अपनाने लगे। चूँकि बेहरामपुरा वॉर्ड में कॉन्ग्रेस की स्थिति मज़बूत थी इसलिए पार्टी ने मंडल के अनुरोधों को गंभीरता से लेना बंद कर दिया था।

फ़ील्डवर्क साक्षात्कार के दौरान मंडल सदस्यों ने बताया कि उन्हें कॉन्ग्रेस पार्षदों से पर्याप्त सहायता नहीं मिलती, परिणामस्वरूप बस्ती के कई कल्याणकारी कार्यों की ज़िम्मेदारी उन्हें स्वयं ही उठानी पड़ती है।[60] मंडल के पास आय जुटाने का कोई वैकल्पिक स्रोत भी नहीं है इसलिए उन्हें ग़ैर-सरकारी संगठनों और बस्तीवासियों की सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है। साथ ही परिस्थितियाँ उलझ जाती हैं जब दोनों समुदायों के बीच तनाव उत्पन्न होने पर निचली जाति द्वारा मंडल के सामंजस्यपूर्ण प्रयासों को मुसलमानों के पक्ष में देखा जाता है। नदी से सटे वडियारवास में रहने वाली निचली जातियाँ टेकरा के मुसलमानों पर आरोप लगाती हैं कि वे बस्ती में अपनी संख्या और स्थान दोनों का लाभ उठाते हैं। उनका आरोप यह है कि टेकरा के मुसलमान वडियारवास को कचरे के एक डंपिंग ग्राउंड के रूप में देखते हैं। दोनों समुदायों में तनाव का कारण अतिक्रमण का मुद्दा भी है। निचली जातियों का यह मानना है कि टेकरा पर मुसलमानों की लाभप्रद स्थिति उन्हें विध्वंस के अपेक्षित ख़तरे से बचाती है, क्योंकि यदि भविष्य में एसआरडीपी के कार्यान्वयन के कारण विध्वंस होता भी है तो नदी से सटी भूमि का अधिग्रहण सबसे पहले होगा, जिससे वडियारवास के प्रभावित होने का ख़तरा ज़्यादा है। अतिक्रमण के मुद्दे पर निचली जातियों के बार-बार शिकायत करने के बावजूद मंडल का रवैया बेहद लापरवाही वाला था जिससे निचली जातियों में रोष पैदा होने लगा और उन्हें मुसलमानों से ईर्ष्या होने लगी।

इसके अतिरिक्त वडियारवास के निवासियों का मानना है कि नगरपालिका से जुड़ी सुविधाओं का

---

[59] राम-रहीम नगर कॉन्ग्रेस-प्रभुत्व वाले बेहरामपुरा वॉर्ड में बसी एक झोपड़ बस्ती है.

[60] मंडल सदस्यों के साथ साक्षात्कार, 23 जुलाई, 2014, राम-रहीम नगर.

लाभ भी टेकरा के निवासियों को मिलता है जो उनकी आपेक्षिक संपन्नता का कारण है। चूँकि पक्की सड़क टेकरे से गुज़रती है इसलिए सरकारी कल्याणकारी सुविधाएँ जैसे, पानी के टैंकरों का प्रावधान, कचरा वैन की उपलब्धता, पाइपलाइन, सार्वजनिक शौचालय और स्ट्रीट-लाइट की सुविधा निचली जातियों की अपेक्षा मुसलमानों को अधिक प्राप्त हैं। बुनियादी नागरिक सुविधाओं के वितरण को लेकर दोनों समुदायों के बीच रोज़मर्रा के संघर्षों की संघ के स्थानीय कार्यकर्ताओं द्वारा सांप्रदायिक व्याख्या की जाती है। ये कार्यकर्ता आजकल बस्ती में काफ़ी सक्रिय हो गए हैं और निचली जाति के युवाओं के साथ घूमते नज़र आते हैं। संघ के कार्यकर्ता बस्ती में तनाव उत्पन्न करने की कोशिश करते हैं परंतु मंडल की उपस्थिति और शांति को संस्थागत बनाने में उसके प्रयास और साथ ही बस्तीवासियों द्वारा साझा सामूहिक झोपड़वासियों की पहचान यहाँ सांप्रदायिक घटनाओं को उत्पन्न होने से रोकती हैं।

IV. निष्कर्ष

अंततः यह सवाल लाज़िमी-सा प्रतीत होता है कि क्या नेता आजकल दंगों को हवा देने से बचते हैं? भले ही 2002 के बाद गुजरात और अहमदाबाद में कोई बड़ा दंगा नहीं देखा गया है, किंतु इस तथ्य के आधार पर किसी सामान्यीकरण पर पहुँचना अनुचित होगा क्योंकि राज्य, शहर एवं ग्रामीण स्तर पर मौजूद सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ और समीकरण एक दूसरे से भिन्न होते हैं। भारत के कई राज्यों में अब भी बड़े दंगे (राज्यव्यापी नहीं) नेताओं द्वारा प्रोत्साहित किए जाते हैं। हाल ही में हुए दो बड़े दंगे- 2013 में मुज़फ़्फ़रनगर (उत्तर प्रदेश) का दंगा और 2020 में दिल्ली का दंगा इस बात का प्रमाण हैं। परंतु बड़ी मशीन को देखते हुए कहीं हमें उन छोटे पुर्ज़ों को देखने से नहीं चूकना चाहिए जो उस बड़ी मशीन के संचालन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। केवल एक बड़ा, प्रभावशाली और प्रासंगिक दंगा ही सांप्रदायिकता को बढ़ावा नहीं देता; बल्कि ज़मीनी स्तर पर नियमित और दीर्घकालिक कार्य सांप्रदायिक तनावों और ध्रुवीकरण को बढ़ावा देने के साथ-साथ उन्हें जीवित रखने का कार्य भी करते हैं, जो कभी-कभी बड़े और घातक दंगों का आकार ले सकते हैं। इसलिए समकालीन सांप्रदायिक राजनीति के इस नए स्वरूप को भी समझने की आवश्यकता है जो बड़ी राजनीतिक मशीनरी के लिए अधिक व्यावहारिक और सुविधाजनक रणनीति के रूप में प्रतीत होती है।

संदर्भ

असग़र अली इंजीनियर (सं.) (2003), द *गुजरात कार्नेज*, ओरिएंट लॉन्गमैन, नई दिल्ली.

असग़र अली इंजीनियर (2004), 'कम्युनल रायट्स, 2003', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, खंड 39, अंक1.

असग़र अली इंजीनियर (2005), 'कम्युनल रायट्स, 2004', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, खंड 40, अंक 6.

आशुतोष वार्ष्णेय (2002), *एथ्निक कॉन्फ़्लिक्ट ऐंड सिविक लाइफ़ : हिंदूज़ ऐंड मुस्लिम्ज़ इन इंडिया*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

ऑरनिट शनि (2005), 'द राइज़ ऑफ़ हिंदू नैशनलिज़म इन इंडिया : द केस स्टडी ऑफ़ अहमदाबाद इन द 1980ज़', *मॉडर्न एशियन स्टडीज़*, खंड 39, अंक 4.

इप्सिता चटर्जी (2009), 'वायलेंट मॉर्फ़ोलॉजीज़ : 'लैंडस्केप, बॉर्डर ऐंड स्केल इन अहमदाबाद *कॉन्फ़्लिक्ट*', *जिओफ़ोरम*, खंड 40.

चेतन भट्ट (2001), *हिंदू नैशनलिज़म : ओरिजिन्स, आइडिओलजीज़ ऐंड मॉडर्न मिथ्स*, ऑक्सफ़र्ड, बर्ग.

कंचन चंद्रा (2004), *व्हॉय एथनिक पार्टीज़ सक्सीड : पेटर्नेज ऐंड एथनिक हेड काउंट्स इन इंडिया*, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

कंसर्न्ड सिटिज़न्स ट्रिब्यूनल (2002), *क्राइम अगेंस्ट ह्यूमैनिटी : ऐन इन्क्वायरी इनटू द कार्नेज इन गुजरात*, लिस्ट ऑफ़ इन्सिडेंट्स ऐंड एविडेंस, खंड 1, अनिल धारकर, मुम्बई.

क्रिस्तॉफ़ जैफ़्रलो (2010), *रिलीजन, कास्ट ऐंड पॉलिटिक्स इन इंडिया*, प्राइमस बुक्स, दिल्ली.

क्रिस्तॉफ़ जैफ़्रलो और लॉरेंट गेयर (सं.) (2012), *मुस्लिम्ज़ इन इंडियन सिटीज़ : ट्रैजेक्टरीज़ ऑफ़ मार्जिनलाइज़ेशन*, हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स, नोएडा.

घनश्याम शाह (1974), 'द अपसर्ज इन गुजरात', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, खंड 9, अंक 32/34.

जूड हॉवेल और उमा कमभम्पति (1999), 'लिबरलाइज़ेशन ऐंड लेबर : द फेट ऑफ़ रिट्रेंच्ड वर्कर्स इन द कॉटन टेक्सटाइल इंडस्ट्री इन इंडिया', *ऑक्सफ़र्ड डिवेलपमेंट स्टडीज़*, खंड 39, अंक 4.

डीओने बुंशा (2006), *स्कार्ड : एक्सपेरिमेंट्स विद वायलेंस इन गुजरात*, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली.

द मिलि गज़ेट (2016), 'कम्युनल रायट्स कंटिन्यू इन पोस्ट-2002 गुजरात', *द मिलि गज़ेट*, नई दिल्ली, 15 सितंबर.

दीपंकर गुप्ता (2011), *जस्टिस बिफ़ोर रेकन्सिलिएशन : नेगोशिएटिंग अ 'न्यू नॉर्मल' इन पोस्ट-रायट मुम्बई ऐंड अहमदाबाद*, रटलेज, नई दिल्ली.

तनिका सरकार (2002), 'सेमिऑटिक्स ऑफ़ टेरर : मुसलमान चिल्ड्रन ऐंड वीमेन इन हिंदू राष्ट्र', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, खंड 37, अंक 28.

नलिन मेहता (2006), 'मोदी ऐंड द कैमरा : द पॉलिटिक्स ऑफ़ टेलीविज़न इन द 2002 गुजरात रायट्स', *जर्नल ऑफ़ साउथ एशियन स्टडीज़*, खंड 29, अंक 3.

प्रताप भानु मेहता (2017), 'मे द साइलेंस बी डैम्ड', *द इंडियन एक्सप्रेस*, नई दिल्ली, 27 जून.

प्रलय क़ानूनगो एवं अदनान फ़ारूक़ी (2008), 'ट्रैकिंग मोदित्व : ऐन एनैलिसिस ऑफ़ द 2007 गुजरात इलेक्शन कैंपेन', *कंटेम्पररी पर्सपेक्टिव्स*, खंड 2, अंक 2.

पॉल आर. ब्रास (2003), *द प्रोडक्शन ऑफ़ हिंदू-मुसलमान वायलेंस इन कंटेम्पररी इंडिया*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

फ्रांसिन आर. फ़्रैंकेल (2005), *इंडियाज़ पॉलिटिकल इकॉनॉमी (1974-2004) : द ग्रैजुअल रेवोल्यूशन*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.

येल नवरो- यशिन (2003), 'लाइफ़ इज़ डेड हियर : सेंसिंग द पॉलिटिकल इन नो मैन्स लैंड', *ऐंथ्रोपोलॉजिकल थियरी*, खंड 3, अंक 1.

रेणु देसाई (2014), 'म्युनिसिपल पॉलिटिक्स, कोर्ट सिम्पैथी ऐंड हॉउसिंग राइट्स : अ पोस्ट-मॉर्टम ऑफ़ डिस्प्लेसमेंट ऐंड रिसेटलमेंट अंडर द साबरमती रिवरफ्रंट प्रॉजेक्ट', अहमदाबाद, सेंटर फ़ॉर अर्बन इक्विटी, सीइपीटी, वर्किंग पेपर, 23 मई.

वार्ड बेरेंस्कॉट (2013), *रायट पॉलिटिक्स : हिंदू मुसलमान वायलेंस ऐंड दि इंडियन स्टेट*, रूपा पब्लिकेशंस, दिल्ली.

संजय कुमार (2003), 'गुजरात असेंबली इलेक्शंस 2002 : एनेलाइज़िंग द वर्डिक्ट', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, खंड 38, अंक 4.

स्टीवन आई. विल्किंसन (2004), *वोट्स एंड वायलेंस : इलेक्टोरल कॉम्पीटीशन ऐंड कम्युनल रायट्स इन इंडिया*, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

सुप्रिया रॉय चौधुरी (1996) 'इंडस्ट्रियल रिस्ट्रक्चरिंग, यूनियंस ऐंड द स्टेट : टेक्सटाइल मिल वर्कर्स इन अहमदाबाद', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली*, खंड 31, अंक 8.

सौरव मुखर्जी (2002), 'मर्डर अक्यूज़्ड इज़ बीजेपी आइडिया ऑफ़ 'क्लीन' कैंडिडेट', *द टाइम्स ऑफ़ इंडिया*, नई दिल्ली, 20 नवंबर.

हॉवर्ड स्पोडेक (2012), *अहमदाबाद : शॉक सिटी ऑफ़ ट्वेंटिएथ सेंचुरी इंडिया*, ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली.